गायत्री शक्तिपीठ :
पूज्य गुरुदेव की दृष्टि,
हमारे दायित्व

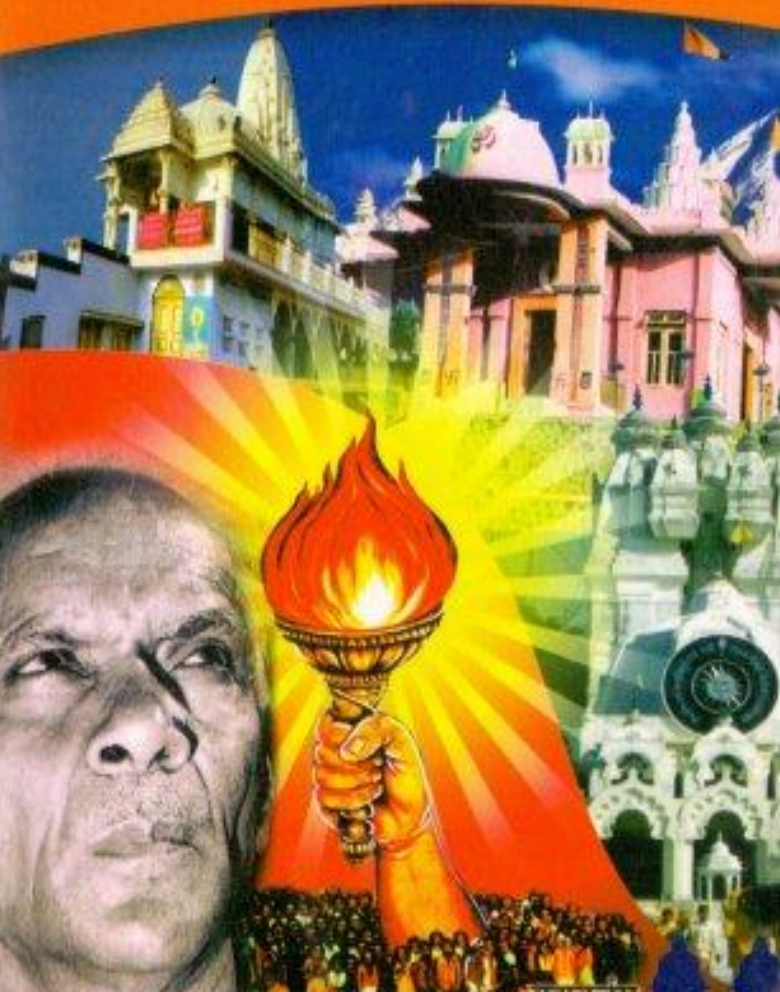

गायत्री शक्तिपीठ :

पू. गुरुदेव की दृष्टि,

हमारे दायित्व

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
युगान्तर चेतना ट्रस्ट
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)

प्रथम आवृत्ति]
सन्- २००६

[मूल्य-
रुपये- १८.००

विषय सूची

१-	युगऋषि की संकल्पना : एक झलक	५
२-	युगशक्ति-निष्कलंक प्रज्ञावतार	१५
३-	पीठों का स्वरूप और उनकी दिशाधारा	२१
४-	धर्म-तन्त्र की विवेक संगत प्रतिष्ठा	२८
५-	जीवन्त जन सम्पर्क हेतु परिव्राजक तन्त्र	३६
६-	संचालकों से अपेक्षाएँ	४६
७-	सृजन सैनिकों की छावनियाँ सिद्ध हो	५४
८-	सृजन का उत्साह और कौशल उभरे	६०
९-	युग शक्ति का प्रवाह प्रखर बनायें	६६
१०-	समयबद्ध लक्ष्य बनाकर चलें	७५
११-	जरूरत है ब्राह्मणत्व के विकास की	८२
१२-	शक्तिपीठ-प्राचीन एवं नवीन	९०

आत्मीय निवेदन

युगऋषि ने नवसृजन के लिए जो सूक्ष्म स्थूल तानाबाना बुना, उसके अन्तर्गत गायत्री शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों की स्थापना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य मात्र, प्राणिमात्र के लिए उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने जैसे महान प्रयोजन की पूर्ति के लिए गायत्री महाविद्या और यज्ञ विज्ञान के परिष्कृत स्वरूप को जन जीवन में प्रतिष्ठित करना जरूरी समझा गया। उसी बीच वसंत पर्व १९७९ पर २४ गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना का दिव्य संकल्प उतरा। दैवी प्रेरणा से अनुप्राणित संकल्प ने जाग्रत आत्माओं को तत्काल प्रभावित किया तथा तमाम विसंगतियों और साधनों के अभाव के बीच भी पीठों के निर्माण का क्रम तीव्र गति से आगे बढ़ा। डेढ़ वर्ष के अन्दर उनकी संख्या सैकड़ों तक जा पहुँची। कुछ ही वर्षों में वह संख्या २४०० का ऑकड़ा पार कर गयी। गायत्री शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों की इस विस्तार प्रक्रिया को विचारशील प्रत्यक्ष दर्शियों ने अद्भुत-अभूतपूर्व माना।

गायत्री शक्तिपीठों के संकल्प का अवतरण सन् १९७९ में हुआ। उसको २५ वर्ष पूरे हुए। २५ वर्ष में अभियान के अन्दर जवानी फूट पड़नी चाहिए। जवानी का अर्थ है नव सृजन की क्षमता और उमंग का उभार। युगऋषि ने गायत्री शक्तिपीठों को जिस उद्देश्य के लिए स्थापित करने की बात कही थी, उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रौढ़, जोशीला अभियान प्रारंभ किया जाना जरूरी है। गायत्री जयंती २००५ से गुरु पूर्णिमा २००७ तक के २५ माह पीठ संकल्प अवतरण की रजत जयंती मनाने के लिए निर्धारित किए गये हैं। इस बीच युगऋषि के इस अभियान को इतना प्रामाणिक एवं प्रखर स्वरूप दे देना है, जिसके नाते यह तंत्र इष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु लम्बे समय तक सही दिशा में गतिशील रह सके। यह पुस्तिका नैष्ठिक, प्राणवान परिजनों के सामने इसी पुण्य प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रस्तुत की जा रही है। विश्वास है कि

जागृतात्मा इससे अपने जीवनोद्देश्य को लक्ष्य करके सराहनीय-अनुकरणीय ढंग से गतिशील होने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों की सार्थकता युगऋषि द्वारा दिए गये निर्देशों एवं स्थापित अनुशासनों के अनुपालन से ही सिद्ध होगी। सन् १९७९-८० की पत्रिकाओं तथा विशेष रूप से प्रकाशित पुस्तिकाओं में उन्होंने विभिन्न चरणों में पूरे किए जाने वाले निर्देश दिए हैं। तमाम सक्रिय परिजन जो उस समय नहीं जुड़े थे, उनसे अनभिज्ञ हैं। पुरानी बातें स्मृति से उतरने भी लगती है। अस्तु इस पुस्तिका में आवश्यकता के अनुसार जगह-जगह उनके द्वारा दिए गये निर्देशों का उल्लेख संदर्भ सहित किया गया है। वर्तमान परिस्थितियों में उन्हें लागू करने के लिए केन्द्र द्वारा संचित अनुभवों के आधार पर व्यावहारिक सूत्र भी प्रस्तुत किए गये हैं।

संदर्भ में पत्रिकाओं के नाम तथा माह का भर संकेत किया गया है। इनके अतिरिक्त ४ पुस्तिकाओं से भी उद्धरण लिए गये हैं। उनमें पुस्तकों के नाम की जगह नीचे लिखे क्रम के अनुसार पुस्तक क्रमांक एवं पृष्ठ क्रमांक अंकित किए गये हैं। १. चौबीस गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना २. गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना ३. गायत्री प्रज्ञापीठ-स्वरूप और कार्यक्रम ४. गायत्री चरणपीठ उद्देश्य-स्वरूप और कार्यक्रम। उदाहरणों में २/३ का तात्पर्य है उक्त पुस्तिकाओं में से क्र.२ की पुस्तिका का पृष्ठ क्र.३। इसी प्रकार अन्य संदर्भ अंकित किए गये हैं।

-प्रकाशक

युगऋषि की संकल्पना : एक झलक

युगऋषि का अवतरण नवयुग सृजन की महान ईश्वरीय योजना को मूर्तरूप देने के लिए हुआ। उनके जीवन का क्षण-क्षण तथा सामर्थ्य का कण-कण इस दिव्य प्रयोजन के निमित्त नियोजित होता रहा। हिमालय स्थित अपनी मार्गदर्शक सत्ता के निर्देशानुसार वे जून सन् १९७१ में मथुरा छोड़कर हिमालय अज्ञातवास के लिए प्रस्थान कर गये। वन्दनीया माता जी भी हरिद्वार के सप्तऋषि क्षेत्र में शान्तिकुंज नाम के छोटे से आश्रम में रहने लगीं।

*नव सृजन के लिए दिव्य ऊर्जा के अविरल प्रवाह की व्यवस्था बनाकर पू. गुरुदेव जब हिमालय से लौटे, तो उन्होंने शान्तिकुंज को साधना आरण्यक का रूप देना प्रारंभ कर दिया। उद्देश्य था नव सृजन के लिए उत्कृष्ट प्राण चेतना सम्पन्न व्यक्तियों को विकसित करना। उन्होंने कहा कि गायत्री युगशक्ति है, इस तथ्य पर जन-जन का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। तमाम शक्तिपीठें हैं, किन्तु गायत्री शक्तिपीठ कहीं नहीं है। ब्रह्मवर्चस से ही उसका प्रारंभ करते हैं। इसी संदर्भ में सन् १९७९ मार्च की अखण्ड ज्योति में उन्होंने लिखा-*बसन्त पर्व की विशिष्ट प्रेरणा यह है कि प्रज्ञावतार के आलोक को भारत भूमि के समस्त धर्म क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए गायत्री तीर्थों की स्थापना की जाय। आद्य शंकराचार्य को भी इस प्रकार की प्रेरणा हुई थी। इस स्थापना के सत्परिणाम पर जितनी गम्भीरता से विचार किया जाय, वह उतनी ही अधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेयस्कर होती जाती है। इसके अनुसार भारत में २४ गायत्री तीर्थ बनने हैं। यह स्थापना उन्हीं स्थानों पर होगी जहाँ परम्परागत विशिष्ट तीर्थ विद्यमान हैं।

गायत्री युगशक्ति के रूप में उभरी है, इस संदर्भ में उन्होंने स्पष्ट किया-

छाई हुई अवाञ्छनीयताओं का निराकरण महाप्रज्ञा के प्रकटीकरण

से ही संभव होगा। विचार क्रान्ति से ही युग की समस्याएँ सुलझेंगी। वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता गायत्री का व्यापक अभियान इन दिनों आँधी-तूफान की तरह इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए चल रहा है। (३/१)

गायत्री महाविद्या का यह प्रचण्ड दिव्य प्रवाह क्यों उभरा है ? इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा-

श्रद्धा की अधिष्ठात्री गायत्री माता का आलोक जन-जन के अन्तराल को स्पर्श करेगा, तो समस्त समस्याओं का समाधान निकलेगा और अनास्था का समापन होकर सुख-शांति का वातावरण बनेगा। उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ मूर्तिमान होने का एक मात्र यही उपाय है।

गायत्री वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता है। उसी के माध्यम से सद्भावों का, सदाचार एवं सुव्यवस्था का आधार बनेगा। व्यक्ति और समग्र समाज का हित साधन वर्तमान परिस्थितियों में ऋतम्भरा प्रज्ञा की छत्र-छाया में ही सम्भव हो सकेगा। आद्यशक्ति गायत्री की क्षमता और प्रेरणा से जन-जन को अवगत कराने का ठीक यही समय है। इसी प्रयोजन के लिए आवश्यक हो गया है कि स्थान-स्थान पर आलोक वितरण के प्रज्ञा केन्द्र स्थापित किए जाएँ। (४/२)

जन जागृति केन्द्र

युगऋषि के आह्वान पर शक्तिपीठों, चरणपीठों के निर्माण का क्रम चल पड़ा। जन सामान्य की परम्परावादी 'मनोदशा' को समझते हुए उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिए कि इन्हें मात्र पूजा स्थलों के रूप में नहीं, युगान्तर चेतना के विस्तार हेतु सशक्त ऊर्जा सम्पन्न, जन जागृति के केन्द्रों का स्वरूप दिया जाय। उन्होंने लिखा-

गायत्री शक्तिपीठें अन्य देवालयों की तरह ही दिखाई पड़ेंगी, पर उनकी मौलिक विशेषता यह होगी कि वे अपने सभी समीपवर्ती वातावरण में युगचेतना उत्पन्न करने के लिए प्राणवान प्रयास करेंगी। दर्शक देवता को प्रणाम करने पधारें यह उचित है, पर इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि देव संस्थान अपने समीपवर्ती क्षेत्र में धर्मधारणा को प्रतिष्ठित

एवं परिपक्व करने के लिए भी प्रबल प्रयत्न करें....। गायत्री शक्तिपीठों का निर्माण जनमानस में धर्मधारणा के प्रति आगाध आस्था उत्पन्न करने और तदनुरूप आचरण में शालीनता एवं उदारता का समावेश करने के उद्देश्य से किया जा रहा है। युग परिवर्तन के लिए व्यक्ति का दृष्टिकोण और चरित्र बदलना चाहिए। गायत्री शक्तिपीठें अपने कार्य क्षेत्र में इसी का सुनियोजित प्रयत्न करेंगी। उन्हें युगतीर्थ की संज्ञा देने में कोई अत्युक्ति नहीं है। (२/३)

प्रज्ञा संस्थानों की कार्ययोजना के संदर्भ में उन्होंने समर्थ गुरु रामदास जी द्वारा स्थापित महावीर मंदिरों का हवाला दिया। आकार में छोटे उन मंदिरों ने तेजस्वी, संस्कृतिनिष्ठ सैनिक पैदा करने में उस समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे लिखते हैं-

यही उपयुक्त लगता है कि जिस प्रकार समर्थ रामदास ने महाराष्ट्र भर में छोटे-छोटे महावीर मंदिर बनाए थे, उसी प्रकार गाँव-गाँव प्रज्ञा मंदिर बनाए जाएँ। भले ही वे आकार की दृष्टि से छोटे और लागत की दृष्टि से सस्ते हों, पर उनमें धर्मतंत्र की गरिमा को बढ़ाने वाले जीवन्त कार्यक्रम सतत चलाए जाते रहेंगे। (३/२)

युगऋषि का स्पष्ट निर्देश रहा है कि इन केन्द्रों से जहाँ गायत्री महाविद्या के प्रचार-प्रसार-शिक्षण का क्रम चले, वहीं व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण के लिए विविध शिक्षण- प्रशिक्षण का भी नियमित क्रम चलाया जाय। यथा....

देवालयों (प्रज्ञा संस्थानों) की इमारत में चलते रहने वाले कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित है। प्रातः-सायं सामूहिक प्रार्थना-आरती। दिन में दो-दो घंटे की तीन (कुल छः घंटे) प्रशिक्षण कक्षाएँ, जिनमें छोटी आयु के बालक, प्रोढ़-अधेड़ आयु के नर-नारी अपनी पढ़ाई की सुविधा प्राप्त करते रहेंगे। इनमें एक कक्षा स्कूली पढ़ाई वाले छात्रों के लिए रहेगी, दूसरी पौढ़ पुरुषों तथा तीसरी महिलाओं के लिए रहेगी। देश में फैली हुई निरक्षरता एवं शिक्षा में अरुचि को हटाने के लिए यह

कार्यक्रम अतीव उपयोगी सिद्ध होगा। आरंभ में ये गतिविधियाँ छोटे रूप में चलें, थोड़े छात्र मिलें, तो भी यह आशा की जा सकती है कि निरन्तर उत्साह मिलते रहने से इस दिशा में कार्यविस्तार अत्यंत तेजी से होता चला जायेगा। निरक्षरता दूर करने का कार्य केवल सरकार की जिम्मेदारी पर नहीं छोड़ा जा सकता, उसे जनसहयोग से ही करना होगा। इसे सफल बनाने के लिए प्रज्ञापीठ जैसे धर्म-संस्थानों को ही नेतृत्व सँभालने की आवश्यकता है। (३/२)

शक्तिपीठों को विचार क्रांति के विस्तारक केन्द्रों के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उनमें तदनुसार व्यवस्थाएँ बनाने के भी स्पष्ट निर्देश दिए गए-

पीठ पर एक सत्संग भवन, परामर्श कक्ष रहेगा। गायत्री शक्तिपीठ, साधना के संदर्भ में जिन्हें कुछ जिज्ञासा होगी, वे वहाँ पहुँचकर विस्तार पूर्वक अपना समाधान प्राप्त कर सकेंगे। इसके लिए एक अनुभवी विद्वान हर घड़ी वहाँ उपलब्ध रहेगा। दिनभर यह परामर्श का क्रम चलता रहेगा। सत्संग भवन का विधान इसी योजना के लिए है। (१/४)

प्रज्ञापीठों के दैनिक कार्यक्रम में रात को कथा कहने का कार्य नियमित रूप से चलता रहेगा। रामायण, गीता, एवं महाभारत आदि प्रमुख हैं, इनके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों के माध्यमों से आज की वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए जाते रहेंगे। *(यह पंक्तियाँ लिखी जाने तक प्रज्ञापुराण का आविर्भाव नहीं हुआ था, इस क्रम में उसे प्रधानता दी जानी उचित है।)* वस्तुत: यही है धर्मतंत्र, जिसके आधार पर अवांछनीयताओं के प्रति आक्रोश एवं सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए उत्साह उत्पन्न किया जा सकता है। कथा शैली का परोक्ष शिक्षण कितना प्रभावी और चिरस्थाई होता है, उसे कहीं भी प्रयोग-परीक्षण करके जाना जा सकता है। (३/३)

हर प्रज्ञापीठ में स्लाइड प्रोजेक्टर, टेप रिकॉर्डर जैसे साधन रहेंगे,

जिनके सहारे आकर्षक लोकरंजन और लोकमंगल की समन्वित प्रक्रिया युगसृजन की बहुमुखी चेतना उत्पन्न करती रहेगी। (३/४)

संसाधनों की व्यवस्था

पीठों का संचालन श्रद्धालुओं के श्रम और श्रद्धानुदानों के माध्यम से किये जाने का अनुशासन उन्होंने बनाया। शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों की सफलता वहाँ के प्राणवान समयदानियों, लोकसेवियों पर निर्भर करेगी, यह स्पष्ट है। इस संदर्भ में पूज्यवर यह चाहते हैं कि उन्हें खोजने, विकसित करने तथा सम्मानजनक ब्राह्मणोचित निर्वाह की व्यवस्था क्षेत्र के श्रद्धालुओं के श्रद्धा-सहयोग से पूरी की जानी चाहिए। चढ़ावे के धन को जनमानस के जागरण हेतु खर्च करने की बात कही और निर्देश दिए-

देव प्रतिमा पर पैसा फेंकने का निषेध रहेगा। कोई दर्शक श्रद्धावश कुछ चढ़ाना चाहेगा, तो तत्काल उसके बदले साहित्य प्रसाद (या संस्थान की रसीद) देने का क्रम रहेगा। प्रसाद साहित्य में गायत्री चालीसा एवं चित्र रहेंगे। यह इतने सुन्दर और सस्ते रखे जा रहें हैं कि आज के समय में घटा दिये बिना दे सकना संभव नहीं हो सकेगा। श्रद्धालुगण अपनी उदार श्रद्धा का प्रतिफल साहित्य के रूप में इस हाथ दें, उस हाथ लें की नीति के अनुसार पाते रहेंगे। चढ़ोत्तरी के धन का दुरुपयोग होने के कारण ही मंदिरों को निहित स्वार्थों द्वारा हड़प लेने का क्रम बनता है। गायत्री शक्तिपीठ एक नयी परम्परा स्थापित करने जा रहे हैं। (१/३-४)

जो लोग युगऋषि की बात समझकर कुछ जिम्मेदारी उठाने को आगे आते हैं, उन्हें जाग्रत् आत्मा कहा गया है। उन्हीं के समयदान-अंशदान से पीठ की प्रभावी गतिविधियों का संचालन करने की मर्यादा बतलाई गई है कि-

युग निर्माण परिवार की प्रत्येक जाग्रत् आत्मा को कहा जा रहा है कि युगसृजन के लिए नित्य दस पैसा एवं एक घंटे समय का अनुदान

देते रहना चाहिए। अब तक इसी समयदान और अंशदान के आधार पर मिशन की गतिविधियाँ अग्रगामी होती रही हैं। अब नये कदम उठे हैं। प्रज्ञापीठों की इमारतें तो मिल-जुलकर चंदे से बनायी जा रही हैं, पर पीछे हर पीठ-संस्थान में रहने वाले कार्यकर्त्ताओं का खर्च इसी मुट्ठी फंड से चलेगा। पीठ-संस्थान में कुछ और भी खर्च रहेगा। साप्ताहिक हवन, पानी, रोशनी, सफाई, साइकिल, स्टेशनरी, मकान मरम्मत, उद्यान जैसे कई कामों में कुछ तो खर्च पड़ेगा ही, उसे कुछ भावनाशील माह में एक दिन की आमदनी या न्यूनाधिक स्वेच्छा सहयोग देकर पूरा करते रहेंगे। (३/४-५)

न्यूनतम अंशदान उन्होंने उस समय आधा कप चाय या आधी रोटी की कीमत के अनुसार लिखा था। आज की परिस्थितियों में इसी अनुसार न्यूनतम अंशदान निर्धारित किया जाना उचित है। भावना और हैसियत के अनुसार अधिक अनुदान निकालने चाहिए, यह स्पष्ट संकेत है। यह मर्यादा अंशदान प्रारंभ करने वालों के लिए है, आगे चलकर नैष्ठिकों को तो अपनी एक दिन की आय अथवा आय के निश्चित प्रतिशत के लिए प्रेरित किया जाता रहा है।

जाग्रत् तीर्थों का विकास

युगऋषि का नवसृजन अभियान अध्यात्म आधारित सामाजिक पुनर्निर्माण को लेकर चल रहा है। बच्चों को पढ़ने के लिए विद्यालय, व्यायाम के लिए व्यायाम शाला आदि के वातावरण की जरूरत होती है। इसी प्रकार अध्यात्म को जीवन धारा में शामिल करने के लिए आध्यात्मिक ऊर्जायुक्त वातावरण की भी जरूरत पड़ती है। इसी उद्देश्य से पू. गुरुदेव ने नवसृजन के लिए जाग्रत् तीर्थों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों की स्थापना की योजना को आगे बढ़ाया।

तीर्थ बनाने के पीछे उनकी अवधारणा केवल आत्म कल्याण के साधना केन्द्रों भर की नहीं थी। उसके साथ लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों के लिए भी उन्हें सक्षम बनाना और युगतीर्थ के रूप में विकसित करना उनका उद्देश्य रहा है। वे लिखते हैं-

गायत्री शक्तिपीठों का कलेवर खड़ा होते ही नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन-परिष्कार के रचनात्मक प्रयास बहुमुखी क्रिया-कलापों में संलग्न होंगे, तो नव निर्माण के स्वप्नों को साकार होने में देरी न लगेगी। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, सभ्य समाज की वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक उत्कर्ष की, नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की अनेकों कल्पनाएँ, धारणाएँ, योजनाएँ पिछले दिनों प्रस्तुत की जाती रही हैं। उनके क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त आधार गायत्री शक्तिपीठों के निर्माण में बन सकेगा। प्रज्ञावतार की क्रीड़ा स्थली के रूप में अगले दिनों उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में इनकी असाधारण भूमिका होगी। (२/१६)

विस्तार की परिकल्पना

पूज्यवर बार-बार यह तथ्य दुहराते रहे हैं कि भारत धर्म-प्राण, अध्यात्म प्रेमी राष्ट्र रहा है। किसी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के लिए, भारतीय जनमानस को उत्साहित करने के लिए धार्मिक-आध्यात्मिक स्पर्श देना जरूरी होता है। इसलिए शक्तिपीठों को उन्होंने उसी अनुरूप बनाने, विकसित करने की कार्ययोजना चलाई। इसी के साथ वे यह देखते हैं कि लम्बी दासता के कारण शिक्षा एवं साधनों की कमी भी आड़े आ सकती है। अस्तु उन्होंने इस योजना को जनसामान्य के संसाधनों और कौशल के अनुरूप आगे बढ़ाने का निर्देश दिया।

अपना देश धर्म परम्परा से अनुप्राणित होते हुए भी साधन रहित देहातों में बिखरा हुआ है। शिक्षा एवं अर्थ साधनों की कमी है। ऐसी दशा में यदि बिना समय गँवाए नवसृजन को तीव्र गति देनी है, तो सस्ते, स्थानीय साधनों और सामान्य कौशल से बन सकने वाले धर्म-संस्थान बनाने होंगे। श्रद्धा एवं सृजन की उभयपक्षीय आवश्यकता पूर्ण कर सकने के लिए इस निर्माण प्रक्रिया को युग की पुकार एवं समय की माँग कह सकते हैं। (३/६)

सीमित साधनों से बनाए गए पीठों के भवनों में बड़ी संख्या में

लोगों को एकत्रित, प्रशिक्षित करना संभव नहीं। इसलिए पीठों से जुड़े प्रज्ञा केन्द्रों को जगह-जगह विकसित करके जन-जन को दिव्य योजना से लाभान्वित करने की रूपरेखा उन्होंने प्रस्तुत की। यह लहर जन-जन तक पहुँचाने के लिए दिशा प्रदान की-

उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए हर पीठ पर सक्षम सेवाभावी, योग्य परिव्राजकों की टोली, नवयुग के संतों के रूप में रखने की बात उन्होंने कही।

समग्र क्रांति के ऊर्जा केन्द्र

युगऋषि ने पहले चरण में इन केन्द्रों को जन सम्पर्क प्रधान बनाने की बात कही, किन्तु उन्हें क्रमशः उद्देश्य के अनुरूप विस्तार देने के लिए उनके स्पष्ट निर्देश रहे हैं। वे लिखते हैं-

फिलहाल इन शक्तिपीठों की स्थापना जन संपर्क केन्द्रों के रूप में की जा रही है। इसलिए उन्हें ऐसे जन संकुल स्थानों में बनाया जा रहा है, जहाँ से तीर्थयात्री (जन सामान्य) अनायास ही निकलते, गुजरते हैं। कुछ समय बाद इन्हीं के पूरक ऐसे आश्रम भी बनेंगे, जहाँ तीर्थयात्रियों को ठहराने, साधना करने एवं मार्गदर्शन प्राप्त करने के लाभ मिलते रहें। (१/२-३)

पीठों ओर उनसे जुड़े आश्रमों के माध्यम से सृजनशील मानसिकता तथा कौशल वाले व्यक्तियों को विकसित एवं संगठित करने के लिए प्रेरित किया जाय, किन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। व्यक्तियों के विकास के साथ उन्हें सत्प्रयोजनों में नियोजित करके सामाजिक उत्कर्ष की तमाम गतिविधियों का संचालन भी जरूरी है। उन्होंने निर्देश दिया-

काम करने की यह आरंभिक कार्य पद्धति है। जन सम्पर्क की सघनता आते ही उन मुख्य प्रयोजनों को हाथ में लिया जायेगा, जिनके लिए इतनी बड़ी और दूरदर्शितापूर्ण योजना बनाई गई है। रचनात्मक कार्यों में प्रौढ़ शिक्षा, गृह उद्योग, वृक्षारोपण, आंगनवाड़ी, स्वास्थ्य प्रबन्धन, शिशु कल्याण, नारी जागरण, श्रमदान, स्वच्छता अभियान, सहकारिता,

अल्पबचत जैसी कितनी ही सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं अभिवर्धन करना है। सुधारात्मक कार्यक्रमों में नशेबाजी, छूत-छात, पर्दाप्रथा, शादियों में अपव्यय, दहेज, मृतकभोज, अन्धविश्वास, हरामखोरी, मिलावट, रिश्वत, बहुप्रजनन, छल, आक्रमण, उच्छृंखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियों के विरोध में वातावरण बनाना प्रमुख है। यह सामाजिक समस्याओं और आवश्यकताओं की चर्चा हुई। भविष्य निर्माण के लिए आत्मिक उत्कृष्टता एवं भौतिक सम्पन्नता बढ़ाने वाले, मिल बाँट कर खाने, हिलमिल कर रहने वाले प्रचलन आवश्यक हैं। इसके लिए ऐसे सरञ्जाम जुटाने होंगे, जिनसे दुनियाँ की सारी आबादी को एकता, शुचिता एवं समता के सूत्र में आबद्ध किया जा सके। (३/४)

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि पूज्यवर सक्रियता का मुख्य प्रयोजन नव सृजन की गतिविधियों को प्रभावी ढंग से चलाने वाले अग्रदूतों को तैयार करना मानते हैं। यदि हम उस उद्देश्य को पूरा नहीं कर पा रहे हैं, तो कर्त्तव्यों की कसौटी पर खरे सिद्ध नहीं हो सकते।

समर्थ व्यापक तंत्र

उन्होंने बार-बार यह तथ्य दुहराया है कि बड़े कार्यों के लिए बड़ी संगठित शक्ति की जरूरत होती है। इसलिए उन्होंने पीठों को स्वतंत्र संस्थान के रूप में नहीं, एक व्यापक तंत्र के समर्थ अंग-अवयव के रूप में तैयार करने की बात कही। इसीलिए उन्होंने पीठों को कानूनी दृष्टि से स्वायत्तता देकर भी उनके अनुशासनों के सूत्र शांतिकुंज के तत्त्वावधान में रखने का अनुशासन बनाया। जिस तरह मिलिट्री की विभिन्न यूनिटें अपने-अपने कार्य, अपने-अपने क्षेत्र में करती रहती हैं, किन्तु समग्र अनुशासन मिलिट्री हैडक्वार्टर का होता है, उसी तरह का समर्थ एवं विकेन्द्रित, सुसमन्वित तंत्र वे चाहते रहे हैं। कितना विराट और गरिमामय लक्ष्य वे चाहते हैं, वह इस वाक्य से स्पष्ट होता है-

अगले चरणों में देश भर को, विश्व भर को, मंडलों में विभक्त

करके हर मंडल के पीछे एक गायत्री शक्तिपीठ बनाने की योजना का क्रियान्वयन किया जायेगा। प्राचीन काल में मंडलेश्वर, मंडलाधीश, क्षेत्राधिकारी ही होते थे। नये युग में व्यक्ति की महत्ता हटाकर उसके स्थान पर तीर्थों के संगठन को प्रतिष्ठित किया जा रहा है। यह गायत्री शक्तिपीठ ही अगले दिनों अपने क्षेत्र के मंडलाधीश तो नहीं, मंडल सेवक के रूप में धर्म धारणा को पुनर्जीवित करने की महान भूमिका सम्पादित करेंगे। (१/२)

कितना विराट, गरिमामय किन्तु विनम्र तंत्र वे चाहते हैं? हमें यह तथ्य समझकर उनके निर्देशों और अपनी निष्ठा से न्याय करने के लिए अपना एड़ी-चोटी का जोर लगा ही देना चाहिए।

ऊपर की पंक्तियों में पीठों की दिव्य संकल्पना-योजना की विभिन्न धाराओं के संदर्भ में युगऋषि के निर्देशों की संक्षिप्त झलकियाँ भर प्रस्तुत की गयी है। इन्ही संदर्भों में उनके विचारों का कुछ अधिक विवरण अगले पृष्ठों पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

युग निर्माण की विचारधाराएँ अपने-अपने देश, समाज, व्यक्ति के अनुरूप अपने-अपने क्षेत्रों में समस्त विश्व में फैलनी हैं। अपनी परिस्थिति, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों के लोग अपने-अपने ढंग से उसे कार्यान्वित करेंगे। इसका आरंभ मात्र गायत्री परिवार द्वारा हो रहा है। यह आरंभ कितना ही छोटा क्यों न हो, उसका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है।

-परम पूज्य गुरुदेव

(वाङ्मय-युग निर्माण योजना दर्शन, स्वरूप ३.५९)

युगशक्ति-निष्कलंक प्रज्ञावतार

युग परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण वेला में परमात्म सत्ता की विशिष्ट शक्ति धाराओं का अवतरण होता है। श्रेय मनुष्य देहधारियों को मिलता रहा है लेकिन अध्ययनशीलों को पता है कि महान परिवर्तन की मुख्य भूमिका अवतार चेतना द्वारा ही पूरी की जाती है। बुद्धावतार के बाद कल्कि निष्कलंक अवतार का विवरण प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। युगऋषि ने गायत्री महाविद्या महाप्रज्ञा को ही निष्कलंक-प्रज्ञावतार कहा है। अखण्ड ज्योति मार्च १९७९ के कुछ अंश देखें :-

गायत्री उपासना चिरकाल से इस देश को शक्ति सामर्थ्य प्रदान करती रही है, इस युग के लिए तो यह संजीवनी बूटी की तरह है। इसलिए उसके अवतरण का जोरदार स्वागत किया जाना चाहिए एक बार यदि वातावरण को संस्कारित कर लिया गया तो उससे राष्ट्र और विश्व को संयत, स्वस्थ, समर्थ, देव भावनाओं से ओत-प्रोत रखने का गति चक्र आप ही चल पड़ेगा। यह जिम्मेदारी उन जागृत आत्माओं पर आती है, जिनकी विवेक बुद्धि वस्तु स्थिति को पहचान सकने में समर्थ है। जिनमें अन्ध विश्वास रूढ़िवादी मान्यताओं और परम्पराओं से लड़ पड़ने का साहस है।

यह आवश्यक नहीं कि जो इस पुण्य प्रयोजन में जुटें, वे उतने उच्च स्तर के साधक और निष्णात हों ही, युगसत्ता ने वह परिस्थितियाँ स्वयं विनिर्मित कर दी हैं। प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, संरक्षण सभी कुछ उपलब्ध है, गायत्री उपासना, दर्शन, कर्मकाण्ड, नियमोपनियमों, विज्ञान आदि सभी पक्षों पर विभिन्न प्रकार की पुस्तकों, पत्रिकाओं द्वारा प्रचुर मात्रा में प्रकाश डाला जा रहा है। लोगों को उसके सम्पर्क में लाने भर की बात है।

युगऋषि यहाँ यह बात बहुत खुलकर बतला रहे हैं कि इस काम में व्यक्ति के योग्यता की कमी आड़े नहीं आने दी जायेगी, उसकी पूर्ति

तो अवतार चेतना करेगी। पूरी निष्ठा के साथ प्रयास भर किया जाना अभीष्ट है। इस प्रयास में मनुष्य के बहिरङ्ग कलेवर के साथ अंतरङ्ग प्राण को, चेतना को प्रखर एवं परिष्कृत बनाना होगा। इस पक्ष को स्पष्ट करते हुए पूज्यवर आगे लिखते हैं-

व्यक्ति मूलत: दो भागों में विभक्त है। एक उसका बहिरंग, कवच ढाँचा, खोखला, जिसे शरीर कहते हैं। दूसरा उसकी चेतना प्राण, गति, तत्परता, इच्छायें, आकांक्षायें, भावनायें। यह सभी जानते हैं कि इनमें महत्त्व दूसरे अंतरंग कलेवर का ही है, तो भी ९० प्रतिशत लोग जीवन के बहिरंग क्षेत्र को ही सजाने सँवारने में लगे रहते हैं।

गायत्री भारतीय संस्कृति का प्राण है। वेदमाता, देवमाता विश्वमाता के रूप में उसकी भूमिका प्राचीन काल में भी महान थी। नव-युग में भी उसी बीज मंत्र का विस्तार विश्व संस्कृति के देव संस्कृति के रूप में होगा उसे नव-युग की कल्प वृक्ष प्रेरणा उद्‌गम कहा जाएगा। इन 24 अक्षरों में ज्ञान और विज्ञान के वे सभी तत्त्व मौजूद हैं जिनके सहारे व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की सुव्यवस्था का पुन:निर्धारण संभव हो सके। आज का 'आस्था संकट' ही प्रस्तुत समस्याओं-विभीषिकाओं का एक मात्र कारण है। समाधान के लिए लोक मानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता की, ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्रतिष्ठापना रखनी होगी। इस प्रयास का सार्वभौम सूत्र संचालन करने की जैसी क्षमता गायत्री मंत्र में है वैसी अन्यत्र उपलबध हो सकना कठिन है। युगान्तरीय चेतना का प्रादुर्भाव प्रज्ञावतरण के रूप में हो रहा है। प्रज्ञा अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा। धार्मिक भाषा में इसे ज्ञान यज्ञ का अनुष्ठान और सामाजिक भाषा में विचार क्रान्ति अभियान कह सकते हैं।

पिछले दिनों गायत्री मंत्र पूजा पाठ के काम आने वाला एक छोटा सा निमित्त कारण था, पर अब उसका विकास, विस्तार पूर्व काल के सतयुग की भाँति ही होने जा रहा है। सृष्टा के संतुलन प्रयासों के निमित्त उभरने वाली प्रचंड प्रेरणाएँ अवतार कहलाती है। इन दिनों उसका

स्वरूप प्रज्ञावतार के रूप में हो रहा है। प्रज्ञा अर्थात् गायत्री-अर्थात विवेकशील-शालीनता। पौराणिक प्रतिपादन के अनुरूप लोक मानस उसी को विनिर्मित करना है। इस युग शक्ति की गति-विधियों को व्यापक बनाने के लिए गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना कितनी महत्त्वपूर्ण होगी, इसकी कल्पना से सहज ही भाव संवेदनाओं में उल्लास भरा उभार आता है।

निष्कलंक महाप्रज्ञा

इस विषम बेला में नियन्ता का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया है, सो हो भी रहा है। समस्या आस्था संकट है। सम्पदा की नहीं विचारणा की कमी पड़ रही है। साधनों का नहीं सद्भावों का अभाव है। अन्तरालों में घुसी हुई निकृष्टता ही सुरसा की तरह सर्वग्रासी बनती जा रही है। उसका निराकरण प्रज्ञा की उदीयमान प्रखरता ही कर सकती है। समाज शास्त्री इसे विचार क्रांति कहते हैं। धार्मिक क्षेत्र में इसका नाम 'ज्ञान यज्ञ' है तत्त्वदर्शी इसी पुण्य प्रवाह को 'प्रज्ञावतार' कहते हैं। अपने समय में भगवान का अवतार इसी रूप में होना चाहिए था, सो हो भी रहा है।

युग परिवर्तन के लिए इससे अधिक और कुछ चाहिए भी नहीं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि दुर्मति के कारण उत्पन्न हुई दुर्गति के निवारण का इससे अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है।

पौराणिक प्रतिपादनों में अपने समय के अवतार का नामकरण निष्कलंक रखा गया है। निष्कलंक अर्थात् कलंक रहित। कलंक रहित कोई व्यक्ति नहीं हो सकता। मानवी सत्ता जिस मिट्टी से गढ़ी गई है, उसमें कहीं न कहीं खोट रहता ही है। निष्कलंक सत्ता एक ही है 'प्रज्ञा'। इसी कसौटी पर कसकर सत्य का निरूपण होता है। सत्य का स्थान कितना ऊँचा क्यों न हो, उसे समझना और पकड़ना प्रज्ञा की सहायता के बिना सम्भव ही नहीं हो सकता। प्रज्ञा ही निष्कलंक है, ऋतम्भरा-प्रज्ञा का ही दूसरा नाम ब्रह्मविद्या है। चेतना जगत की यही आद्यशक्ति है, इसी को सामयिक गतिविधियों के अनुरूप युग शक्ति

नाम दिया गया है। प्रज्ञावतार को ही निष्कलंक कह सकते हैं।

युगान्तर चेतना

महान जागरण और महान परिवर्तन का सूत्र-संचालन दिव्य लोक से उभरी हुई सक्रियता का उपयुक्त नाम **'युगान्तरीय चेतना'** है। देव संस्कृति का उदय और स्वर्गीय परिस्थिति का नव निर्माण उसी का काम है। इसी ने जागृत आत्माओं को अनुप्राणित किया है। उदीय सूर्य की प्रथम किरणें भी तो सर्वप्रथम गिरि शिखरों पर ही चमकती हैं। द्वितीय चरण में दिनकर का आलोक समस्त भू-मण्डल को ही आच्छादित कर देता है, यों गुफाओं में अन्धेरा तो मध्याह्न काल में भी बना रहता है। युगान्तरीय चेतना को ही कितने दृष्टिकोण से, कई रूपों से समझा, अपनाया जा रहा है। सामाजिक क्षेत्रों में उसे विचार क्रांति कहा जा रहा है। सृजन शिल्पी उसे जनमानस का परिष्कार कहते हैं। दार्शनिक क्षेत्र में उसे ज्ञानयज्ञ की संज्ञा दी गई है। अध्यात्म वादियों ने उसे प्रज्ञावतार की संज्ञा दी है। चूँकि यह प्रयोजन धर्मतंत्र से लोक शिक्षण की प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होना है, इसलिए उसे गायत्री अभियान कहा जाना भी उचित है। यहाँ गायत्री से तात्पर्य धर्मानुष्ठान के लिए प्रयुक्त होने वाले एक शब्द गुच्छक तक सीमित नहीं है, वरन् उसे महाप्रज्ञा के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। उसका कार्यक्षेत्र सार्वभौम और लक्ष्य सर्वजनीन है। गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना इसी देव चेतना को जन-जन के मन में प्रतिष्ठापित करने के लिए की जा रही है। उनका स्वरूप हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुरूप बने हुए देवालयों जैसा है। पर भी उसका कार्यक्षेत्र किसी देश, जाति या धर्म की परिधि में सीमित नहीं है। उसका विस्तार विश्वव्यापी है।

चूँकि आज विश्वधर्म का कोई स्वरूप विद्यमान नहीं है, इसलिए उसके लिए वर्तमान धर्मों के माध्यम से ही विश्व धर्म की-विश्व दर्शन की पृष्ठभूमि खड़ी करनी होगी। प्रभात का शुभारंभ पूर्व से होता है।

अग्रणी होने का श्रेय उसी को प्राप्त है। भारत पूर्व भी है और अग्रणी भी। अध्यात्म उसकी अपनी प्रकृति और परम्परा है। अतएव शुभारंभ का उत्तरदायित्व भी उसी के कंधे पर आना है। '**प्रज्ञावतार**' सार्वभौम है। ऋतम्भरा प्रज्ञा भी सार्वजनीन है गायत्री शक्तिपीठों की योजना, रीति-नीति एवं कार्य पद्धति भी व्यापक है। प्रतिमाओं की प्रतिष्ठानों एवं उपचार पद्धति भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही रखी गई है। जिस देश से अरुणोदय हो रहा है उसके लिए वर्तमान परिस्थितियों में वही सर्वोत्तम है। अन्य देशों में अगले दिनों इसी प्रतिष्ठानों का विस्तार होगा। तब उन क्षेत्रों की संस्कृति के अनुरूप प्रतीकों और परम्पराओं को अपनाया जाएगा और वहाँ के जनमानस को सार्वदेशिता की दिशा में क्रमशः अग्रसर किया जाएगा।

प्रज्ञावतार ही पौराणिक मान्यता के अनुरूप निष्कलंक है। यह प्रमाण पत्र है, जिसके लिए कलंकों का आरोपण और अग्नि परीक्षा से उसका निराकरण आवश्यक है। शक्तिपीठों के निर्माण में अनेकानेक विग्रह का खड़ा होना प्रायः वैसा ही है जैसा राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को निरस्त करने के लिए आसुरी तत्वों ने विविध छद्म रूप से आक्रमणों का सिलसिला चलाया था। इसमें बिगड़ा कम बना अधिक। प्रज्ञावतार की युगान्तरीय चेतना को भी इसी प्रकार के अवरोधों में होकर गुजरना होगा। इतने पर भी सफलता की आत्मिक परिणित सुनिश्चित है। निष्कलंक प्रज्ञावतार द्वारा युग परिवर्तन की प्रक्रिया को सम्पन्न होने में आस्थावानों को तनिक भी सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी तथ्य को दूसरे ढंग से स्पष्ट करते हुए युगऋषि सितम्बर १९७९ को अखण्ड ज्योति में अपनों से अपनी बात के स्तंभ में लिखते हैं-

सृष्टा ने समय-समय पर असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने की भूमिका निभाई है। महाविनाश की घड़ी आने तक यह क्रम चलता ही

रहेगा। नियति के अन्यान्य निर्धारणों की तरह सन्तुलन में सक्षम चेतना का यथा समय अवतरण होना भी एक सुनिश्चित विधान है, उसे सक्रिय ऐसे ही अवसरों पर होना पड़ता है जैसा कि आज है। अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन की आवश्यकता जब भी अनिवार्य हुई है तभी "**तदात्मानं सृजाम्यहं**" का आश्वासन मूर्तिमान होते और आश्वासन की पूर्ति करते देखा गया है। अवतार की सुदीर्घ शृंखला का यही इतिहास है। इसी में एक नया अध्याय, प्रज्ञावतरण का और जुड़ रहा है। आस्था संकट की सघन तमिस्रा का निराकरण ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्रभात बेला ही कर सकती है। गायत्री यही है। जनमानस का परिष्कार और देव युग का निर्धारण उसी तत्त्वज्ञान के आलोक से सम्भव होगा। गायत्री को एक वर्ग की पूजा प्रयोजन समझा भर गया है। वस्तुतः वह इतनी स्वल्प और सीमित है नहीं। उनमें मानवी चिन्तन और चरित्र को देवत्व की दिशा में घसीट ले जाने वाले सभी तत्व विद्यमान हैं। उस अवलम्बन से देव युग में स्वर्गीय परिस्थितियों का लाभ चिरकाल तक इस धरती के निवासी उठाते रहे हैं। पुनर्जागरण की इस सन्धि बेला में उसी पुरातन को पुनर्जीवित किया जा रहा है।

इतिहास अपनी पुनरावृत्ति कर रहा है। अपना गायत्री परिवार एक ईश्वरीय महान् प्रयोजन की पूर्ति में सहायक बनने के लिए पुनः आ इकट्ठा हुआ है। अच्छा हो हम अपने को पहचानें और अतीत काल की सूखी स्मृतियों को फिर हरी कर लें। निश्चित रूप से हम एक अत्यन्त घनिष्ठ और निकटवर्ती आत्मीय परिवार के चिर आत्मीय सदस्य रहते चले आ रहे हैं।

-परम पूज्य गुरुदेव (महा. का युग प्र. प्रक्रिया ७३.७९)

पीठों का स्वरूप और उनकी दिशाधारा

प्रत्येक महान कार्य के पीछे महान उद्देश्य और सूक्ष्म प्रेरणा प्रवाह होता है। फिर भी उनका प्रारंभ तो किसी छोटे स्थूल क्रिया-कलाप से ही किया जाता है। इसी रीतिनीति के अनुसार युगान्तरीय चेतना को विश्व व्यापी प्रत्यक्ष प्रवाह का रूप देने के लिए युगऋषि ने गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना को प्राथमिक शुभारंभ कहा। समय की माँग को पूरा करने के लिए उनकी आवश्यकता के साथ उनकी मर्यादाओं दिशा-धाराओं को भी उन्होंने स्पष्ट किया है। अखण्ड ज्योति अप्रैल १९७९ की अपनों से अपनी बात में वे लिखते हैं :-

निर्देश उतरा और संकल्प उभरा है कि युगशक्ति के शक्ति स्रोतों के रूप में असंख्य गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना हो और उन आलोक केन्दों से सर्वत्र युग चेतना की ऊर्जा का विस्तार किया जाय। जन मानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता की प्रतिष्ठापना ही वह कार्य है, जिसके आधार पर उज्ज्वल भविष्य के स्वप्नों को साकार किया जा सकता है। समझा जाना चाहिए कि यह शक्तिपीठ मात्र देवालय न होंगे। देव दर्शन से भावुक भक्तों को किसी प्रकार संतोष हो भी सकता है, किन्तु सत्परिणामों की आवश्यकता हो तो सत्प्रयत्नों को भी हाथ में लेना होगा। जिन गायत्री शक्तिपीठों की प्रतिष्ठापना की जा रही है, उनमें आद्य शक्ति की प्रतिमा तो उसकी सहचरी चौबीस धारा-उपधाराओं सहित होगी ही। पर इसे आरंभ कहा जाएगा अन्त नहीं। दर्शनार्थी देव प्रतिमा की झाँकी करने के साथ ही इन देवालयों से वह प्रेरणा भी ग्रहण करेंगे, जो उन्हें युग के अनुरूप पलने-बदलने के लिए-चिन्तन में उत्कृष्टता और चरित्र में आदर्शवादिता का समावेश करने के लिए प्रबल उत्कंठा उत्पन्न करें। इन्हीं प्रयासों को योजनाबद्ध रूप से इन गायत्री शक्तिपीठों के साथ ही सुनियोजित किया जा रहा है।

देवालय और आश्रम शक्तिपीठों को दो भागों में विभक्त रखा गया

है। प्रथम चरण में जनसम्पर्क के लिए देवालयों की स्थापना और द्वितीय चरण में प्रशिक्षण एवं साधना के लिए आश्रम बनेंगे। देवालय ऐसे सघन स्थानों पर रहेंगे, जहाँ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से आगन्तुकों का बाहुल्य रहता हो। आश्रम ऐसी जगह बनेंगे जहाँ शांति का वातावरण हो। सघन स्थानों में जमीन कठिनाई से मिलती है और मँहगी होती है, इसलिए वहाँ अधिक जन-सम्पर्क के लिए ही स्वल्प साधनों के रहते थोड़ा स्थान उपलब्ध हो सकता है। देवालयों का औचित्य एवं उपयोग इसी में है। आश्रमों में अधिक समय ठहरने की, निवास निर्वाह के लिए शांति वातावरण की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे स्थान प्रकृति सान्निध्य में, हरियाली और शान्तिदायक परिस्थितियों के बीच होने चाहिए। हरिद्वार में यही किया गया है। ब्रह्मवर्चस में गायत्री शक्तिपीठ के रूप में एक शोध संस्थान की व्यवस्था है। साधकों को जीवन निर्माण का प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने के लिए गायत्री नगर बनाया गया है। यही व्यवस्था घोषित २४ शक्तिपीठों में रहेगी। उनके दो खण्ड होंगे। १. प्रचार प्रयोजन एवं जन संपर्क के लिए देवालय २. प्रशिक्षण, साधना के लिए निवास-निर्वाह की सुविधा सम्पन्न आश्रम, आरण्यक।

जन सम्पर्क के लिए सघन क्षेत्र चाहिए। वहाँ स्वभावतः जमीन मँहगी भी मिलेगी और छोटी भी, अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए उसे अनिवार्यः तीन मंजिली इमारत के रूप में बनाना पड़ेगा। आरण्यक-आश्रम एक मंजिला खुले एवं विस्तृत क्षेत्र में हरियाली समेत होने चाहिए। दोनों के उद्देश्य एक-दूसरे के पूरक हैं, इसलिए अच्छा होता कि वे साथ-साथ रहते और पास-पास बनते, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वैसी सुविधा मिलनी कठिन है। जो एक साथ दोनों उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें। जहाँ कुछ बन पड़ेगा वहाँ वैसा भी किया जायगा, किन्तु प्रस्तुत परिस्थितियों को देखते हुए सहज नीति यही निर्धारित की गई है कि दोनों को दो स्थानों में, दो बार में बनाया जाय। प्रथम चरण में गायत्री शक्तिपीठों का पूर्वार्द्ध पूरा किया जा रहा है और तीन मंजिलें देवालय

बनने जा रहे हैं। अगले चरण में जब इन्हीं स्थानों पर आरण्यक आश्रम बनेंगे, तो उनके लिए बड़ी सस्ती और विरल क्षेत्र की जमीन उपलब्ध की जाएगी।

विगत वसन्त पर घोषित २४ गायत्री शक्तिपीठ निर्माण के संकल्प में तीन मंजिल देवालयों के निर्माण की ही रूपरेखा है। नीचे वाली मंजिले में गायत्री माता की भव्य प्रतिमा रहेगी। आगे विशाल हाल रखा गया है, जिसमें बहुसंख्यक भीड़ भी खड़ी होकर एक साथ दर्शन कर सके। आरती, पूजन वन्दन में हजारों व्यक्तियों की उपस्थिति में अड़चन उत्पन्न न करे। दूसरी मंजिल को सत्संग भवन या परामर्श कक्ष समझा जा सकता है। परामर्श कक्ष नाम देना इसलिए अधिक उपयुक्त है कि दर्शनार्थियों में से जो गायत्री विधा के सम्बन्ध में अधिक जानने के लिए उत्सुक होंगे, उन जिज्ञासुओं को उनकी जिज्ञासा के अनुरूप मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए यही व्यवस्था रहा करेगी। एक विद्वान मनीषी इस प्रयोजन के लिए वहाँ सदा प्रस्तुत रहा करेगा। जिज्ञासु अपनी-अपनी मनोभूमि के अनुरूप शंकाओं का समाधान और उपयुक्त परामर्श प्राप्त करने का निरन्तर लाभ उठाते रहेंगे। ऊपर वाली तीसरी मंजिल को कार्यकर्त्ता निवास कक्ष तथा अतिथि गृह कहेंगे। इन शक्तिपीठों की अनेकानेक प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए न्यूनतम पाँच और अधिकतम दस परिव्राजक यहाँ स्थानीय रूप से रहा करेंगे। उनके भोजन, शयन, नित्यकर्म, मनन, स्वाध्याय आदि की सारी व्यवस्था शक्तिपीठ की ऊपरी मंजिलों में ही रहा करेगी। १. देवालय २. सत्संग कक्ष ३. कार्यकर्त्ता निवास और अतिथि गृह के तीनों ही प्रयोजन एक-दूसरे से सम्बद्ध एवं पूरक हैं, जिन्हें परस्पर जोड़े बिना तीर्थ निर्माण की समग्र आवश्यकता पूरी हो ही नहीं सकती।

समय की माँग

पू. गुरुदेव ने युगनिर्माण अभियान के कार्यों को व्यवस्थित विकास का आधार देने के लिए गायत्री शक्तिपीठों को समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बताया है। अखण्ड ज्योति सितम्बर १९७९ में वे स्पष्ट लिखते हैं :-

जिन्हे सूक्ष्म दर्शन का आभास देने वाली दिव्य दृष्टि प्राप्त हैं, उन्हें यह अनुभव करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि युग परिवर्तन की सुखद सम्भावनाओं को मूर्तिमान करने के लिए गायत्री शक्तिपीठों के निर्माण की कितनी आवश्यकता है। स्थान न होने पर बैठा कहाँ जाए? बैठने को जगह तक न हो तो किया क्या जाए? उथले और अस्थिर कार्य तो चलते-फिरते भी हो सकते हैं, किन्तु अनेकानेक गतिविधियों का सूत्र संचालन किन्हीं केन्द्रों से ही हो सकता है। गायत्री तपोभूमि, शांतिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री नगर आश्रमों का अस्तित्व न होता, सब कुछ चलते-फिरते ही किया जाता रहता, तो जो बन पड़ा है उसका शतांश भी सम्भव नहीं था। अब मथुरा और हरिद्वार के दो आश्रम पर्याप्त नहीं रहे। प्रवृत्तियों की तीव्रता और व्यापकता ने तकाजा किया है कि आलोक वितरण के लिए अनेकानेक केन्द्रों की व्यवस्था बनाई जाए। बिजली उत्पादन के लिए एक बड़ा केन्द्र हो सकता है। किन्तु हर नगर का, हर मुहल्ले का सब स्टेशन भी बनता है, ट्रान्सफार्मर अनेक लगाने पड़ते हैं। सत्ता भले ही दिल्ली में केन्द्रित रहे पर शासन तंत्र को चलाने के लिए क्षेत्रीय कार्यालयों की आवश्यकता रहेगी ही।

समय आ गया है कि युग सृजन की चेतना का एक मात्र केन्द्र या एक व्यक्ति के द्वारा सूत्र संचालन पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। उसके लिए सब डिवीजन चाहिए। गायत्री शक्तिपीठों को महान सूत्र संचालन तंत्र का विकेन्द्रीकरण कहा जा सकता है। उसकी उपयोगिता, आवश्यकता के प्रतिपादन में जितना कुछ कहा जा सके उतना ही कम है। उन्हें वर्तमान पीढ़ी के लिए गौरव गरिमा का और भावी पीढ़ी के लिए सुखद-सम्भावनाओं का केन्द्र बिन्दु माना जा सकता है। समय से पूर्व बड़ी बात कहने से तो कुछ लाभ नहीं। चुनाव घोषणा पत्रों की तरह इस कथन को भी अतिशयोक्तिपूर्ण और अविश्वस्त माना जा सकता है, किन्तु जब इन कल्पवृक्षों के फलित होने का अवसर आवेगा तो, एक स्वर से यही माना जाएगा कि उनकी आवश्यकता, उपयोगिता, प्रतिक्रिया

एवं सम्भावना के सम्बन्ध में जो कहा गया था, वह स्वल्प, नम्र, एवं संकोच युक्त था। जो होने जा रहा है उसके सम्बन्ध में इन दिनों उसको कहीं अधिक उत्साह वर्धक एवं आशाजनक कहा जा सकता है। जिसे संक्षेप में और शील संकोच को ध्यान में रखते हुए कहा जा रहा है।

उन्होंने पीठों का महत्त्व समझाने के साथ ही उनकी गरिमा के अनुरूप कार्य पद्धति तथा उसकी मर्यादाओं को भी भली प्रकार दृष्टिगत रखा। अप्रैल १९७९ की अखण्ड ज्योति में उनने लिखा है :-

कार्य पद्धति

तीर्थों में नियमित रूप से चलने वाली कार्य पद्धति यह है :-

१. एक परिव्राजक देव प्रतिमा के निकट रहेगा। वे दर्शकों को गायत्री माता का महत्त्व समझायेंगे और उनका प्रसाद हर दर्शनार्थी को देंगे।

२. दूसरा परिव्राजक इस विशाल भवन में लगे हुए गायत्री की चौबीस शक्ति धाराओं के २४ चित्रों का परिचय कराने में गाइड की तरह दर्शनार्थियों के साथ रहा करेगा।

३. गायत्री विद्या में रुचि लेने वाले दर्शकों की जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए सत्संग कक्ष में एक परिव्राजक हर घड़ी उपलब्ध रहेगा।

४. साहित्य स्टाल को एक परिव्राजक सम्भालेगा ५. जहाँ तीर्थयात्री उतरते, ठहरते या भ्रमण करते हैं, उन स्थानों में जाकर एक परिव्राजक, बिना मूल्य गायत्री माता के अत्यन्त सुन्दर चित्र प्राय: एक हजार की संख्या में हर दिन वितरण करेगा और उनसे गायत्री तीर्थ पहुँच कर प्रकाश प्राप्त करने का अनुरोध करेगा। इस प्रकार पाँच परिव्राजकों की ड्यूटी प्रभात की आरती से लेकर सायंकाल की आरती तक रहेगी और वे अपना काम मुस्तैदी से करते रहेंगे।

यदि पाँच परिव्राजकों की ही व्यवस्था बन पड़ी, तो तीर्थ को कुछ घंटे खुलने और कुछ घंटे बन्द होने की व्यवस्था बनाई जायगी। क्योंकि उन्हें भोजन बनाने, खाने, विश्राम करने तथा अन्य आवश्यक

कार्यों की व्यवस्था के लिए भी समय चाहिए। इतने समय तक तीर्थ बन्द रखने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। जहाँ दस परिव्राजकों की व्यवस्था हो जायेगी, वहाँ उनकी ड्यूटी बदलती रहेगी। प्रात: की आरती से सायं की आरती तक तीर्थ बराबर खुला रहेगा। जहाँ इतना प्रबन्ध हो जाय, समझना चाहिए वहाँ पूर्ण व्यवस्था है। जहाँ पाँच ही परिव्राजकों से काम चल रहा हो वहाँ समझना चाहिए कि आरंभिक काम चलाऊ व्यवस्था ही यहाँ बन पड़ी है। दस परिव्राजकों की आवश्यकता हर तीर्थ में इसलिए भी है कि समय-समय पर उस मण्डल में अनेकों गायत्री यज्ञ एवं युग निर्माण सम्मेलन होंगे, उनकी व्यवस्था सम्भालने के लिए भी इन्हीं तीर्थवासी परिव्राजकों में से दो-दो के जत्थे पहुँचते रहेंगे। चार को उस क्षेत्र के शिविरों, आयोजनों में भेज दिया जाय, तो शेष छ: किसी प्रकार तीर्थ व्यवस्था सम्भाल लिया करें। जब भीड़ के दिन हों तो दसों रहें, जब भीड़ का सीजन चला जाय तो दो-दो के दो जत्थे उस मण्डल में जन-जागृति की तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़ें। इससे स्थानीय व्यवस्था और क्षेत्रीय जागृति के दोनों ही उद्देश्य इन्हीं परिव्राजकों से पूरे हो जाया करेंगे।

१. प्रज्ञावतार के अरुणोदय का परिचय इन तीर्थ देवालयों के माध्यम से धार्मिक जगत में द्रुतगति से विस्तृत होगा।

२. परिव्राजक अभियान को विश्वव्यापी बनाने के लिए बड़ी संख्या में भर्ती और उनके लिए सुनियोजित कार्यव्यवस्था बनाना।

३. विचार क्रांति के लिए युग साहित्य का जन-जन तक पहुँचाया जाना। यह तीनों ही उद्देश्य इस तीर्थ योजना के माध्यम से एक साथ सुनियोजित ढंग से पूरे होने हैं।

इन तीर्थों में प्रतिमाओं के सम्मुख पैसे फेंकने की परम्परा को पूर्णतया निषिद्ध रखा जायगा, जो दर्शक श्रद्धांजलि के रूप में कुछ भी प्रस्तुत करेगा, उसे तत्काल उससे ड्यौढ़े-दूने मूल्य का प्रसाद साहित्य आशीर्वाद रूप में और दस पैसा चढ़ाने वाले को एक चालीसा और दो गायत्री चित्र दिए जाया करेंगे। इसी अनुपात से देव प्रतिमा के

सम्मुख चढ़ने वाली धन श्रद्धांजलि की तत्काल वापिसी होती रहने से तीर्थयात्री की श्रद्धा में कटौती नहीं होगी वरन् वह ब्याज समेत वापिस होकर उसे तत्काल मिल जाया करेगी। तीर्थ यात्री घर लौटते है, तो अपने स्वजन सम्बन्धियों के लिए तीर्थ प्रसाद ले जाते हैं और उन्हें बाँटते हैं। इसके लिए प्रसाद पैकेट अलग से तैयार किये गये हैं। जिसमें १० गायत्री चालीसा और २४ गायत्री चित्र कुल मिलाकर ३६ उपहार रहेंगे जिन्हें प्राप्त करने वाला निस्सन्देह कुछ ऐसा उपलब्ध करेगा, जिसे सच्चे अर्थों में तीर्थ का प्रेरणा प्रसाद कहा जा सके। इस प्रसाद वितरण परम्परा से युग शक्ति गायत्री के आलोक का प्रसार विस्तार देश-विदेश के कोने-कोने में पहुँच सकना सम्भव हो सकेगा। इन चित्रों के पीछे [illegible] का महत्त्व एवं प्रयोग भी छपा होगा। जिससे उसके उपयोग की जानकारी भी इन प्रसाद प्राप्त कर्त्ताओं को उपलब्ध होती रहे।

रजत जयंती वर्ष में आद्य शक्ति गायत्री का युगशक्ति के रूप में परिचय देने वाला साहित्य मिशन के सूत्र संचालक ने नये सिरे से लिखा है। [illegible] के प्रतिपादनों का सारांश और जो कुछ अगले दिनों लिखा जाना है उसका सार तत्व इस नव निर्मित साहित्य में भर दिया है। इन पुस्तकों की संख्या २० है। इन्हें गायत्री महाशक्ति के समस्त पक्षों पर [illegible] सारगर्भित प्रकाश डालने वाला युग साहित्य कह सकते हैं। इन २० पुस्तकों को भारत की, संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में प्रकाशित करने की योजना है। मुख पृष्ठ अत्यंत सुन्दर, नयनाभिराम रखा गया है। कागज छपाई एवं पृष्ठ संख्या की दृष्टि से इसे अपने समय का [illegible] सस्ता साथ ही उच्च स्तरीय साहित्य कह सकते हैं।

[illegible] पूज्यवर ने जिस साहित्य की बात कही है, वह क्रांतिधर्मी साहित्य सैट के नाम से उपलब्ध है। इसके सम्बन्ध में गुरुवर ने यह कहा था कि लिखे तमाम साहित्य में से लोग यदि केवल इतना ही पढ़ लें तो युगनिर्माण का प्रवाह प्रखर हो जायेगा।

धर्म-तंत्र की विवेक संगत प्रतिष्ठा

पूज्य आचार्य प्रवर ने भारत को धर्म प्राण देश कहते हुए जहाँ धर्म की उपेक्षा को नाकारा, वहीं उन्होंने धर्म तंत्र से परिष्कृत विवेक संगत युगानुरूप प्रयोग की आवश्यकता पर भी बल दिया। शक्तिपीठों को उन्होंने धर्म तंत्र की ऐसी ही युगानुरूप प्रतिष्ठा समर्थ इकाइयाँ बनाने के निर्देश दिये। अखण्ड ज्योति जुलाई १९७९ की अपनों से अपनी बात में उन्होंने लिखा:-

धर्मतंत्र की उपयोगिता शासन तंत्र से कम नहीं। भौतिक प्रगति अपेक्षित है। किन्तु आन्तरिक उत्कृष्टता के बिना तो बढ़ी हुई सम्पन्नता भी विपत्ति और विनाश के विग्रह ही खड़े करती है। बहिरंग सम्पन्नता के साथ अन्तरंग की भी सुसंस्कारिता कम महत्व की नहीं है। शासन का कार्य व्यवस्था बनाने और सम्पन्नता बढ़ाने है, तो धर्म का कार्य उत्कृष्टता के अभिवर्धन का उत्तरदायित्व संभालना है। दोनों का कार्यक्षेत्र तो अलग है पर दोनों परस्पर मिलजुलकर मानवी गरिमा के उभय पक्षीय प्रयोजनों को पूरा कर सकते हैं। शासन की तरह ही धर्म को भी समर्थ होना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादाओं में रहकर एक दूसरे के सहायक और पूरक बन सकते हैं। युग सृजन से जन मानस का परिष्कार ही धर्मतंत्र का प्रधान कार्यक्रम है। यह समृद्धि संवर्धन की तरह महत्त्वपूर्ण है। सुसंगठित धर्म संस्थानों के रूप में गायत्री शक्तिपीठों का निर्माण हो रहा है। आवश्यकता को देखते हुए उनकी संख्या का विस्तार होना उज्ज्वल भविष्य का शुभ लक्षण है।

असमंजस का एक ही कारण हो सकता है कि देवालयों की वर्तमान दुर्गति और सड़ांध को देखते हुए विचारशील वर्ग चौंके और यह आशंका करे कि प्रतिगामिता की कहीं यह नई हवेलियाँ तो नहीं बन रही हैं। ऐसा सोचना उचित भी है। देश में हजारों बड़े और लाखों छोटे

मंदिर बने हुए हैं। इनकी गतिविधियों और उपलब्धियों का पर्यवेक्षण करने पर निराशा ही हाथ लगती हैं। प्रतिमा पूजन में इतनी जनशक्ति और धनशक्ति, लगना किन्तु उत्कृष्टता के संवर्धन में उनसे कुछ भी योगदान न मिलना, रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए इन समर्थ साधनों का कुछ भी उपयोग न होना निश्चय ही निराशाजनक है। बहुत बार तो निहित स्वार्थों द्वारा इन देवालयों की आड़ में जो विकृतियाँ उगाई जाती हैं, उनसे अश्रद्धा ही नहीं बढ़ती, उत्तेजना भी उत्पन्न होती है। विचार शील वर्ग की देवालयों के प्रति अवज्ञा से हर कोई परिचित है। ऐसी दशा में गायत्री शक्तिपीठों को सरसरी दृष्टि से देखने पर देखने वालों को अप्रसन्नता ही हो सकती है।

पर तथ्य को निकट से देखने पर यह आशंका सहज ही तिरोहित हो जाती है। शक्तिपीठों के निर्माण की योजना का सूत्र संचालन जिस केन्द्र से होता है, वहाँ दूरदर्शिता और उपयोगिता को पूरी तरह ध्यान में रखा जाता है। धर्म संस्थान किस रूप में अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं, इसके प्रयोग-परीक्षण का अवसर प्रस्तुत करना इस निर्माण का उद्देश्य है। इस प्रयोग की सफलता से लोक मत का दबाव बढ़ेगा कि देवस्थानों में लगे हुए साधनों का उपयोग इसी स्तर पर किया जाय। इससे चिंतन को दिशा मिलेगा। धर्म संस्थानों को अपनी गतिविधियों पर नये सिरे से विचार करना होगा और उनके पुनर्निर्धारण के लिए विवश होना होगा। तुलनात्मक अध्ययन के लिए जो अवसर चाहिये, उसे यह शक्तिपीठें प्रस्तुत कर सकेंगी ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

यदि ऐसा हो सके तो यह एक बड़ी क्रांति होगी। धर्म के निमित्त लगने वाली धनशक्ति, श्रमशक्ति, बुद्धिशक्ति और भावनाशक्ति को यदि सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन की ओर मोड़ा जा सके, तो यह ऐसा ही चमत्कार होगा जैसा कि बाढ़ से भूमि और फसल को नष्ट करने वाली नदियों पर बाँध बनाकर नहरें निकालना और बिजली घर बनाना।

धर्मतंत्र की अस्तव्यस्ता की व्यवस्था में प्रतिगामिता को प्रगतिशीलता में बदलने का यह अभिनव प्रयास है, जिससे धर्म संस्थान बनाने की मूल भावना का प्रत्यक्ष स्वरूप देखा जा सकता है।

धर्म तत्त्व को यदि इस बुद्धिवादी युग में अपना अस्तित्व बनाये रखने और सम्मान पाने की इच्छा हो, तो उसे अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय देना होगा। अन्यथा समय की दौड़ में पिछड़ने वाले प्राणी जिस प्रकार अपना अस्तित्व गँवा बैठे उसी तरह धर्म के प्रति बढ़ती हुई उपेक्षा अन्ततः उसे अवांछनीय घोषित करके ही रहेगी। शक्तिपीठों का सृजन, धर्म प्रचार की विडम्बना से एक कदम आगे बढ़कर धर्म तंत्र का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने वाले पुनीत संस्थानों के रूप में हो रहा है। देखने में वे वर्तमान देवालयों से ही मिलते-जुलते प्रतीत होंगे। प्रतिमाओं की पूजा आरती का सनातन उपक्रम देखकर अनुमान यही लगाया जायगा कि मंदिरों की विरादरियों में यह एक और नये सम्प्रदाय का जन्म है। किन्तु यह असमंजस आक्षेप देर तक टिक नहीं सकेगा। वस्तुस्थिति समझने का अवसर मिलते ही प्रतीत होगा कि आकृति मिलती-जुलती होने पर भी प्रकृति में जमीन आसमान जैसा अन्तर है। अपनी उत्कृष्टता और उपयोगिता सिद्ध करके शक्तिपीठ धर्म तंत्र के प्रति बढ़ती हुई अश्रद्धा को रोकने और श्रद्धा सम्वर्धन का प्रयोजन पूरा करने में भली प्रकार समर्थ हो सके। यह सच्चाई कुछ ही दिनों में सामने आ खड़ी होगी।

निन्दा से बचें प्रतिष्ठा पाएँ

गुरुदेव ने ऊपर इतनी महान् संभावनाओं के साथ भटकाव-विसंगतियों से होने वाले नुकसान और उनसे बचकर उपार्जन करने के लिए भी परिजनों को सावधान किया है। अखण्ड ज्योति अप्रैल १९७९ में उन्होंने लिखा है :-

कई व्यक्ति देवालय बनाने के लिए भावावेश में अत्यंत उतावली करते हैं और भूल जाते हैं कि भावावेश में इमारत बना देना सरल है, पर

इन देवालयों के पीछे पुजारी, पूजा सामग्री तथा इमारत को जो नियमित खर्च पड़ता है उसका क्या प्रबन्ध होगा? यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है जिसकी आमतौर से उपेक्षा की जाती है। फलतः आज अधिकांश देव मन्दिरों की बुरी तरह दुर्दशा हो रही है। वे टूटते नष्ट होते चले जा रहे हैं। असंख्य मन्दिरों की यही दुर्गति है। इसे देखकर उनके निर्माताओं की अदूरदर्शिता एवं एकांगी भावावेश पर तरस आता है। जिनमें पैसा भी खर्च हुआ और पीछे अपयश भी सहना पड़ा। पूजा से देवता प्रसन्न होते हैं, तो दुर्गति पर रुष्ट भी होते होंगे। सम्भवः इन अदूरदर्शी देवालय निर्माताओं को स्थापित देवता का अभिशाप भी सहना पड़ता होगा।

गायत्री तीर्थों के निर्माण की योजना अत्यन्त उच्च-स्तर से उतरी है। उसे कार्यान्वित शांतिकुंज से ही किया जा रहा है। उसका मूल संचालन समर्थ कन्धों पर रखा गया है। उतावले लोगों की मनोभूमि श्रेय प्राप्ति और अहंता की तृप्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है। वे मन्दिर निर्माता, प्रबन्धक बनने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ते हैं, ताकि किसी आर्थिक लाभ का छिद्र ढूँढ़ सकें या आत्म श्लाघा की पूर्ति के सस्ते अवसर पा सकें। उन्हें इस बात का ध्यान भी नहीं रहता है कि उन सस्ते प्रसंगों के लिए अवसर मिले या न मिले पर इतना निश्चित है कि देवालयों के पीछे निरन्तर खर्च का भार तत्काल लद जाता है। यदि उसकी पूर्ति न बन पड़े तो कल्पित श्रेय की अपेक्षा हजार गुनी आत्म ग्लानि तथा लोक-भर्त्सना सहनी पड़ती है। गायत्री शक्तिपीठों में तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट है। चढ़ोत्तरी ही मन्दिरों की प्रधान आय रहती है। उसे इन देवालयों में जड़ मूल से काट दिया गया है। ऐसी दशा में निर्माण के दिनों जहाँ विपुल राशि लगेगी वहाँ बनने के दिन से ही भारी दैनिक खर्चा भी तीर्थ पर लग जाएगा। भावावेश कुछ दिन ही उसकी पूर्ति कर सकता है। निर्माताओं की पीढ़ियाँ भी उसे वहन करती रहें, यह पूर्णतया अनिश्चित है। उपहास और अपवाद के प्रसंग खड़े होना, निर्माताओं की भर्त्सना तक की ही बात नहीं है, वरन् इस सन्दर्भ में निर्देश करने वाली

शक्तियों से लेकर प्रज्ञावतार तक को निन्दा का भाजन बनना पड़ेगा।

धर्म का विशालकाय ढाँचा मात्र जन साधारण में सदाशयता, शालीनता, सद्भावना जैसी सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण, अभिवर्धन के निमित्त ही बनाया गया है। नीति और सदाचरण की मर्यादाओं का परिपालन किये बिना व्यक्ति की सुख शान्ति और प्रगति का द्वार नहीं खुल सकता। समाज की परम्पराओं में भी उत्कृष्टता न घुल सके तो फिर लोग बुद्धिमान और धनवान होते हुए भी अपनी समार्थ्य को विलासिता विडम्बना और अहंता की पूर्ति के लिए दूसरों को गिराने में ही लगे रहेंगे, ऐसी दशा में वे सभी प्रयत्न निष्फल होते रहेंगे जिनके आधार पर समस्याओं के समाधान एवं उज्जवल भविष्य के सपने देखे गये। वैभव और बल को महत्व तो है पर उसकी सार्थकता उपयोगी तभी बन पड़ती है, जब साथ में आदर्शवादी दृष्टिकोण एवं क्रिया कलाप भी जुड़ा रहे। इस समस्त भूमिका को प्राचीन काल में धर्मतंत्र ने ही निभाया है। उसकी गतिविधियों को सुनियोजित रखने के लिए देवालयों का एक व्यवस्थित तंत्र खड़ा किया गया है। अब तक देवालयों के प्रति जो जन साधारण की श्रद्धा अविच्छिन बनी रही है, उसका कारण रूढ़िवादी अन्ध-परम्पराओं को नहीं, सन्निहित सृजन क्षमता को ही माना जाना चाहिए।

साधु और ब्राह्मणों के प्रति अभी भी जो उदार सद्भाव एवं सम्मान-वन्दन के भाव पाये जाते हैं, उसके पीछे उन वर्गों का प्राचीन इतिहास एवं क्रिया कलाप ही प्रमुख है। मूल तत्व जहाँ भी घटेंगे, वहीं उपेक्षा, अवज्ञा के भाव पनपेंगे और बढ़ते-बढ़ते वे विरोध तिरस्कार के रूप में परिणत होंगे। देवालयों की भव्यता ही इन दिनों मात्र आकर्षण रह गई है। जहाँ उसकी कमी रहती है, वहाँ दर्शकों का दर्शन दुर्लभ हो जाता है। इस तथ्य को हमें हजार बार समझना चाहिए और गाँठ बाँधकर रखना चाहिए कि यदि प्रज्ञा संस्थान अपने दावे के अनुरूप जन-जागृति के केन्द्र न बन सके, अन्य मन्दिरों की तरह पूजा पाठ की लकीर ही पीटते रहे, तो वर्तमान पीढ़ी उन्हें भी सहन न करेगी। हमने

धर्म की आत्मा को वापिस लाने के लिए सच्चे मन से प्रयत्न करने का वचन देकर ही जन सहयोग उपलब्ध किया है, पूरा न करने पर वचन भंग के दोषी और जनता की अदालत में भर्त्सना ही नहीं प्रताड़ना के भी भाजन बनेंगे।

ऐसी दुखद स्थिति उत्पन्न न होने पाये इसके लिए आरम्भ से ही सतर्कता बरतने की, भटकाव न होने देने की स्थिति बनानी चाहिए। हर प्रज्ञा संस्थान को अपने घोषित रचनात्मक कार्यक्रमों को गतिशील बनाने के लिए जन सम्पर्क की योजना बद्ध तैयारी करनी चाहिए। कहना न होगा कि इसके लिए निर्धारित सप्तसूत्री कार्यक्रम को परिपूर्ण तत्परता और जागरूकता के साथ समझा जाना चाहिए और उसे क्रियान्वित करने में कुछ उठा न रखा जाना चाहिए। प्रज्ञा संस्थानों ने यदि अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व समझा होगा, घोषणा, आश्वासन एवं वचन को ध्यान में रखा होगा तो उपरोक्त सजीवता को बढ़ाने के लिए भी ठीक वैसा ही मनोयोग एवं पुरुषार्थ लगाया होगा, जितना कि इमारत बनाने-उद्घाटन आयोजन को प्रभावी बनाने के लिए किया था। जिनका जोश आवेश स्तर का है और जो दूसरे ही क्षण अपना अस्तित्व गँवा बैठते हैं। जहाँ बचकाने लोगों ने रामलीला जैसा धूम-धड़ाका रचा होगा, उनकी उमंग तो होली जलने या फुलझड़ी उड़चाते देखकर सन्तुष्ट एवं समाप्त हो गई होगी। किन्तु जहाँ दूर दृष्टि एवं निष्ठा काम कर रही होगी, वहाँ इस बात का भी ध्यान रखा गया होगा कि जन जागरण के लिए समुचित प्रयास अनवरत क्रम से चलता रहे।

जिन प्रज्ञापीठों में यह सजीवता जितनी अधिक होगी, उन्हें उसी अनुपात से जन समर्थन एवं सहयोग भी मिलेगा। जो मात्र पूजा आरती को ही सब कुछ मानकर उतने भर से अपने कर्तव्य की इतिश्री कर रही होंगी, उन्हें यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि अन्य मन्दिरों की तुलना में उन्हें लोक भर्त्सना भी अधिक सहनी होगी। वचन न देने की तुलना में वचन देकर मुकरना अधिक निन्दनीय माना जाता है। अन्य

मन्दिरों में कुछ किया नहीं जाता, तो कम से कम चुप तो रह रहे हैं। प्रगति शीलता का, आदर्शवादिता का कोई दावा तो नहीं करते। ऐसी दशा में वे वचन न देने के तो दोषी हैं और लोक श्रद्धा के साथ खिलवाड़ करने के कारण भर्त्सना के पात्र भी हैं। इतने पर भी वे अक्रोश और प्रताड़ना से बच सकते हैं, क्योंकि उनने वचन देकर मुकरने का जुर्म नहीं किया जिसे निष्क्रियता ग्रस्त प्रज्ञा संस्थान कर रहे हैं।

गरिमा बनाए रखें

*पीठों को **आध्यात्मिक ऊर्जा केन्द्रों** के रूप में विकसित करके उन्हें गरिमामय बनाएँ रखने के संदर्भ में युगनिर्माण योजना जनवरी ८१ के अंक में लिखा :-*

गायत्री शक्तिपीठों और प्रज्ञापीठों के निर्माण के पीछे जो तथ्य सन्निहित हैं, उन्हें समझने पर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि इन निर्माणों को उन देवालयों के समतुल्य नहीं माना जा सकता, जिनकी भव्यता तो विशाल है पर धर्म-धारणा के अभिवर्धन में उनका कोई कहने लायक योगदान नहीं है। इन निर्माणों के पीछे युग निर्माण और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण की वे सभी संभावनाएँ सन्निहित हैं, जिनके आधार पर लोक मानस बदलने और स्वर्गीय परिस्थितियों के अभिनव निर्माण की आशा अपेक्षा की जा सके।

आज व्यक्ति और समाज के सामने अगणित समस्यायें, विपत्तियाँ, चिन्तायें, आशंकायें एवं विभीषिकायें मुँह बाँधे खड़ी हैं। मोटी दृष्टि से कारण और उपचार कुछ भी सोचे जा सकते हैं पर गम्भीरता पूर्वक जब कारणों को तलाश किया जाता है, तो एक तथ्य उभर कर आता है-आस्था संकट।

गायत्री शक्तिपीठों का कलेवर तो वर्तमान देवालयों जैसा ही है पर उसमें नवीनता एवं विशेषता यह होगी कि पुरातन की आत्मा को उसमें पूर्णतया प्रकाशवान एवं गतिशील देखा जा सकेगा। जन मानस के परिष्कार की सुविस्तृत योजना उसकी कार्य पद्धति का अभिन्न अंग है।

कार्यक्षेत्र बँट रहे हैं। जन सम्पर्क के व्यापक प्रयासों का विधिवत् निर्धारण हो रहा है। इसके लिए प्राणवान परिव्राजकों की नियुक्ति एवं शिक्षा-व्यवस्था चल रही है। जानकारी से विदित है कि इस आरंभ का अन्त कहा होना है ? शुभारंभ के समय जलने वाले दीपक, एक से दूसरे को प्रकाश देते हुए दीप-पर्व का रूप धारण करने जा रहा हैं। समर्थगुरु रामदास द्वारा महाराष्ट्र के गाँव-गाँव में महावीर मन्दिरों के साथ जुड़े हुए अखाड़े बनाये गये थे और उनकी संयुक्त शक्ति से शिवाजी के नेतृत्व में सुनियोजित स्वतंत्रता संग्राम चलाया था। बुद्ध ने बिहारों, चैत्यों और संघारामों की स्थापना की थी। उनमें रामधुन की रट नहीं लगती थी- विश्व सृजन की प्राणवान योजनायें बनती, क्रियान्वित होती और व्यापक क्षेत्र में अपना आलोक वितरण करती थीं।

गायत्री शक्तिपीठों के उद्देश्य और प्रयासों में आस्था संकट से जूझने, जन-मानस को परिष्कृत करने, देव संस्कृति को पुनर्जीवन देने एवं उज्ज्वल भविष्य की संरचना के समस्त तत्वों को सन्निहित एवं उमंग भरी दूरदर्शिता के साथ क्रियान्वित होता देखा जा सकता है। उसमें व्यक्ति, परिवार और समाज की अभिनव संरचना के रचनात्मक कार्यक्रमों का समावेश है। नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक उत्कृष्टता के अभिवर्धन की तैयारियाँ जिस तत्परता और सफलता के साथ गतिशील की जा रही हैं। उन्हें देखने वाले इस तथ्य पर सहज ही विश्वास करते हैं कि युग परिवर्तन की महान भूमिका शक्तिपीठों जैसे धर्म संस्थान ही सम्पन्न कर सकते हैं।

जीवन्त जन सम्पर्क हेतु परिव्राजक तंत्र

पू. गुरुदेव ने शक्ति पीठों को युग सृजन के लिए आध्यात्मिक ऊर्जा केन्द्रों के रूप में विकासित करने की प्रेरणा दी। उसी के साथ इस तथ्य पर भी ध्यान दिलाया कि भवन की प्रतिष्ठा वहाँ कार्यरत जीवन्त व्यक्तियों के आधार पर बढ़ती है। प्रचार तो अनेक तकनीकों से भी किया जा सकता है किन्तु सृजन के लिए तो व्यक्तित्व सम्पन्नों के सम्पर्क से ही काम बनता है। इसी सूत्र को स्पष्ट करने के लिए अखंड ज्योति फरवरी ७९ के अंक में लिखा गया-

युग सृजन का संकल्प एक ही कार्य पद्धति को अपनाने से संभव हो सकता है, वह है-नव जागरण के लिए अनवरत जन सम्पर्क। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी कार्यक्रम आ जाते हैं जिन्हें प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं सुधारात्मक कार्यों में गिना जाता है। बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ ही अपने युग की समस्त समस्याओं को हल कर सकती हैं। इसके लिए जागृत आत्माओं द्वारा जन जागरण का आलोक वितरण करने के लिए जन सम्पर्क पर निकलना ही एक मात्र उपाय है। लेखनी और वाणी की सामर्थ्य कितनी ही क्यों न हो, पर उसका वास्तविक लाभ तो प्राणवानों का जन सम्पर्क ही उत्पन्न कर सकता है।

बादलों की तरह खेत-खेत पर बरसने से ही व्यापक हरितिमा उत्पन्न की जा सकेगी। पवन की तरह जन-जन तक अनुदान पहुँचाने का प्रयास ही प्राणियों में जीव चेतना का अस्तित्व बनाये रह सकता है। सूर्य की तरह गर्मी, रोशनी और चन्द्रमा की तरह शीतलता बाँटने के लिए ठीक वैसे ही परिभ्रमण की योजना बनानी, पड़ेगी जैसी कि प्राचीन काल के ब्राह्मण, साधु और वानप्रस्थ अपनाते थे। अतीत की गौरव गरिमा का मेरुदण्ड धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए परिभ्रमण करने की धर्मनिष्ठा

को ही समझा जा सकता है। तीर्थ यात्रा का प्रधान उद्देश्य यही है।

भगवान बुद्ध ने युग क्रान्ति के लिए इस पुण्य परम्परा का अपने ढङ्ग से सामयिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पुनर्गठन किया था। छोटे बड़े रूपों में प्राय: सभी सन्तों ने अपनी कार्य पद्धति में उसी धर्म धारणा का समावेश किया है। युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने के लिए प्रव्रज्या अभियान को प्रमुखता देना प्रधान उपाय है।

परिव्राजकों की तीन श्रेणियाँ हैं। (१) वरिष्ठ (२) कनिष्ठ (३) समयदानी।

(१) वरिष्ठ वे जो अपना अधिकांश समय घर से बाहर रहकर दे सकते हैं।

(२) कनिष्ठ वे जो साल में दो महीने बाहर जाने के लिए दे सकते हैं और शेष समय में अपने समीपवर्ती क्षेत्र में जन जागरण के लिए प्राय: दो घण्टे रोज लगाते रह सकतें हैं।

(३) समयदानी वे जो बाहर तो नहीं जा सकते पर अपने स्थान पर दो घण्टे नित्य छुट्टी के दिनों का उपयोग इसी पुण्य प्रयोजन में लगाते रह सकते हैं।

परिव्राजक प्रशिक्षण

ऋषि तंत्र के निर्देशानुसार कार्य करने के लिए जिन समयदानियों, परिव्राजकों का प्रशिक्षण भी जरूरी है इस संदर्भ में पूज्यवर ने मई ७९ की अखण्ड ज्योति में स्पष्ट निर्देश दिय-

शक्ति पीठों में भेजे गये परिव्राजकों की प्रशिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार चलेगी

(१) दर्शकों को नौ प्रतिमाओं के दर्शन कराते हुए- सत्प्रवृत्तियों का महत्व समझाना और उन्हें अपनाकर देवोपम जीवन जीने की प्रेरणा देना

(२) जिनमें जिज्ञासा के कुछ भी बीजांकुर मिलें, उन्हें सत्संग कक्ष में बिठाकर आत्मीयतापूर्वक भारतीय संस्कृति के तत्व बीज गायत्री और उसके अवलम्बन का स्वरूप समझाना। इस अवलम्बन की दूरगामी प्रतिक्रिया समझाना

(३) सम्पर्क में जिनके साथ घनिष्ठता बढ़े उन्हें साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा के द्वारा सर्वतोमुखी आत्म विकास के लिए प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन देना
(४) दो परिव्राजकों के एक जत्थे का प्रतिदिन दो गाँवों में जाना। विचारशील लोगों से सम्पर्क बनाना। नवयुग के सन्देशों से अवगत करना और तदनुरूप ढलने की प्रेरणा देना।
(५) जन्म-दिन मनाने का उत्साह उत्पन्न करके व्यक्ति निर्माण की, संस्कार प्रचलन से परिवार निर्माण की, पर्व त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाकर समाज निर्माण की चेतना उत्पन्न करना। इन धर्म- कृत्यों के सहारे अधिकाधिक सम्पर्क साधना।
(६) रात्रि को किसी गांव में रुक कर वहीं रामायण, गीता, आदि की कथा कहना और धर्म चेतना उत्पन्न करना।
(७) पन्द्रह दिन का गति चक्र बना कर हर दिन दो गांवों में जाने के क्रम से तीस गांवों का एक मण्डल बनाना और उसे अपना मण्डलीय कार्य क्षेत्र मानकर विचार- क्रान्ति के लिए पथ प्रशस्त करना।
(८) अपने क्षेत्र में चलपुस्तकालयों की व्यवस्था बनाना।
(९) प्रौढ़ शिक्षा, नशा निवारण, वृक्षारोपण, श्रमदान, व्यायामशाला, स्वच्छता, सह कारिता, कुप्रथाओं, अन्धमान्यताओं का और अनैतिकताओं का उन्मूलन जैसे रचनात्मक प्रयत्नों में स्वयं लगना, दूसरों को लगाना।
(१०) कर्मक्षेत्र में चल रही सरकारी गैर सरकारी सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए जन सहयोग जुटाना।

परिव्राजकों का सम्पर्क प्रयोजन, व्यक्तिगत दोस्ती बढ़ाना या आवारागर्दी में भटकना नहीं वरन् रचनात्मक कार्यों के लिए भावभरा जन सहयोग उत्पन्न करना है। इन प्रयोजनों में निरन्तर दत्तचित्त रहने वाले परिव्राजक अपने उज्ज्वल चरित्र और शालीनता भरे सौम्य व्यवहार से असंख्यों को स्नेह-बन्धनों में जकड़ेंगे और उन्हें मानवी गरिमा को बढ़ाने वाला दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करेंगे ऐसा विश्वास किया जा सकता है। युग निर्माण योजना विशुद्ध रूप से व्यक्ति निर्माण,

परिवार निर्माण और समाज निर्माण के कार्यक्रमों में संलग्न है। उसका विश्वास है कि राष्ट्र और विश्व का वास्तविक निर्माण इसी प्रकार हो सकता है। राजनैतिक विरोध समर्थन दूसरे लोगों का काम है, परिव्राजकों को तो सरकारी, गैर सरकारी सभी क्षेत्रों का, सभी व्यक्तियों का सहयोग समर्थन, सत्प्रवृत्ति, सम्वर्धन के लिए उपलब्ध कराने और उन्हें उचित सहयोग देने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

परिव्राजकगण अपने चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार को प्रामाणिक बनाने के लिए, लोक सेवियों के लिए दिशाबोध पुस्तिका के सूत्रों को समझें और अभ्यास में लायें।

टीम भावना से कार्य

हर शक्तिपीठ में पांच परिव्राजकों की एक टीम रहेगी। एक देवालय की व्यवस्था सम्भालेगा। दो -दो की दो टोलियों में शेष चार परिव्राजक समीपवर्ती क्षेत्रों में सम्पर्क स्थापित करने जाया करेंगे। एक दिन में एक गाँव हो सके इस दृष्टि से एक महीने में तीस गाँवों का शक्तिपीठ मण्डल बनाने का विचार किया गया है। एक टोली हो तो महीने में एक दिन, दो टोलियाँ हों तो महीने में दो बार उन गांवों में जाने का अवसर मिलेगा। दिन में जन सम्पर्क, रात्रि में प्रवचन का क्रम चलेगा। प्रयत्न यह होगा कि गाँव के उपयोगी वर्ग से इस अवसर पर सम्पर्क साधा और सघन बनाया जाए। अनेकों रचनात्मक प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं परिपोषण ही इस सम्पर्क का एकमात्र उद्देश्य होगा। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के लिए जिन स्थापनाओं की, जिन उन्मूलनों की आवश्यकता है उन सबको सम्पर्क योजना में सम्मिलित रखा गया है। जहाँ जिसके लिए जिस प्रकार अवसर होगा वहाँ उसी प्रकार प्रगतिक्रम आगे बढ़ाया जाएगा। संक्षेप में भौतिक एवं आत्मिक सत्प्रवृत्तियों की दृष्टि से आवश्यक सभी रचनात्मक योजनाओं को इसमें सम्मिलित रखा गया है।

नव-निर्माण के लिये स्थान सम्बन्धी व्यवस्था का प्रयोजन शक्तिपीठों की इमारत से सम्पन्न होगा। उस छाया में बैठकर सम्बद्ध मण्डल क्षेत्र

को सुविकसित बनाने का उपयोगी निर्धारण और कार्यान्वयन उसी केन्द्र से होता रहेगा। इस सक्रियता का उभार न तो भवनो से बन सकता है, न प्रतिमा से और न साधन-सुविधा से। यदि इतने से ही काम चल गया होता तो वर्तमान हजारों लाखों मन्दिरों से न जाने सर्वतोमुखी प्रगति के लिए कितनी बड़ी सहायता मिली होती। समर्थ गुरु के महावीर मन्दिर, सिख धर्म के गुरुद्वारे, बौद्धों के बिहार, जैनों के चैत्य, साधुओं के मठ, वानप्रस्थों के आरण्यक जिस उद्देश्य से बने थे, यदि वही परम्परा प्रस्तुत देवालयों में भी प्रवेश कर सकी होती, तो सचमुच वे धर्म और अध्यात्म की भारी सेवा कर सकने में समर्थ हो गये होते। किन्तु वैसा कुछ भी न हो सका इसका एक ही कारण है कि इन देवालयों में रामकृष्ण परमहंस परम्परा के पुजारियों का प्रबन्ध न हो सका। शक्तिपीठों में पांच प्रशिक्षित एवं परखे हुए परिव्राजकों की नियुक्ति के पीछे एक ही उद्देश्य है कि वे इन धर्म संस्थानों को अपने व्यक्तित्व एवं श्रम से कल्पवृक्ष की तरह चन्दन वृक्ष की तरह हर दृष्टि से सार्थक सिद्ध कर सके।

बुरे सम्पर्क की, कुसंग की दुष्परिणामों की हानियाँ सर्व विदित हैं। सत्सम्पर्क एवं सत्सङ्ग का सत्परिणाम भी कम प्रभावी नहीं होता है।

पाप से पुण्य की, दैत्य से देव की, ध्वंस से सृजन की, शक्ति निश्चित रूप से अत्यधिक है। प्राचीनकाल में सन्त परम्परा ने जन सम्पर्क के अनेकानेक उपाय अपनाकर लोक मानस में धर्म धारणा की फसल लगाई और गरिमा भरी रत्नराशि उगाई थी। आज भी भावनात्मक सृजन के लिए उन्हीं प्रयत्नों का पुनर्निधारण आवश्यक है। मात्र राजनैतिक और आर्थिक सुधार ही पर्याप्त नहीं। भौतिक समृद्धि ही सब कुछ नहीं है। व्यक्तित्वों में उत्कृष्टता की मात्रा का सम्वर्धन भी आवश्यक है। हर क्षेत्र में घुसे हुए अनाचार को चुनौती देना आवश्यक है। श्रेष्ठता का समर्थन, दुष्टता विरोधी जनमानस का मार्ग निर्धारण आवश्यक है। यही कार्य इन परिव्राजकों को करना होगा। वे अपने भागीरथी प्रयासों से अपने सम्पर्क क्षेत्रों को पुष्पोद्यान की तरह सुविकसित कर सकेंगे, ऐसी

आशा और अपेक्षा सहज ही की जा सकती है।

कहाँ क्या करना है ? किस क्षेत्र की परिस्थिति और आवश्यकता क्या है ? यह देखते हुए स्थूल गतिविधियाँ निर्धारित की जाएंगी। किन्तु मूल तथ्य जहाँ का तहाँ रहेगा। जन-जन में चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा उत्पन्न करना और सृजन प्रयोजनों के लिये अपनी स्थिति के अनुरूप योगदान देना, यही जन-जन को सिखाया जाए। जिस आस्तिकता-आध्यात्मिकता और धार्मिकता की आस्थायें जगानी हैं, वे उनकी प्रतिक्रिया मनुष्य में चारित्रिक पवित्रता और व्यावहारिक प्रखरता उत्पन्न करने के रूप में ही सामने आनी है। शक्तिपीठों का, उनके साथ जुड़े हुए परिव्राजकों का, प्रवाह, प्रयास इस स्तर का होगा कि वे वातावरण में युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करें और ध्वंस को सृजन में बदलने का चमत्कार कर दिखायें।

तीर्थों के अभिन्न अंग

परिव्राजकों को तीर्थों का अभिन्न अंग मानते हुए युग ऋषि ने युग तीर्थों में प्राणवान परिव्राजकों की नियुक्ति और उनकी मर्यादाओं पर प्रकाश डालते हुए मई ७९ की अखण्ड ज्योति में लिखा-

प्रव्रज्या अभियान और गायत्री तीर्थ स्थापना को एक-दूसरे का पूरक कहा जाता है। दोनों के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहेगा। तीर्थ की इमारत को पाँच तत्वों से बना हुआ शरीर और उसमें गतिविधियों का जीवन संचार करने वाले पाँच प्राणों के प्रतीक पाँच परिव्राजकों के रूप में देखा जा सकेगा।

गायत्री तीर्थों का निर्माण उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है। आवश्यक है कि उनकी गतिविधियों का संचालन करने वाले भी व्यक्तित्व की दृष्टि से ऐसे हों, जो सम्पर्क में आने वालो में धर्म श्रद्धा का संचार कर सकें। यह स्तर ही वह आधार है जिसके सहारे इन धर्म संस्थानों के सफल सिद्ध होने की आशा की जा

सकती है।

पीठों के परिव्राजक ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज में प्रशिक्षण प्राप्त होंगे। उन्हें गुण, कर्म, स्वाभाव की दृष्टि से ऐसा बनाने का प्रयत्न किया जायगा जो सौंपे गये उत्तरदायित्व को संभाल सकने के उपयुक्त कहा जा सके। तीर्थ पुरोहित को उपासना पद्धति एवं धर्म-कृत्य करा सकने की शास्त्रीय जानकारी होनी चाहिए। वें अपने विषय में प्रवीण एवं अनुभवी सिद्ध हो सकेंगे तभी उन्हें इन तीर्थों में भेजा जायेगा। कोई सीधी नियुक्ति कहीं भी नहीं होगी और न उपयुक्त शिक्षण में प्रवीणता प्राप्त किये बिना किसी को तीर्थ संचालन का काम सौपा जायेगा।

परिव्राजक एक वर्ष से अधिक कहीं नहीं रहेंगे। उनका स्थानान्तरण हर वर्ष होता रहेगा। पाँचों एक साथ ही रहें यह आवश्यक नहीं, पुरानी मण्डलियाँ एक वर्ष से अधिक ठहरने की बात कभी-कभी, कहीं-कहीं अपवाद के रूप में ही बनेगी अन्यथा साधारणतया स्थानान्तरण ही होते रहेंगे। इससे तीर्थ सेवन का बहुत बड़ा लाभ भी उठा सकेगा और मोह बन्धनों से बंधकर उस उद्देश्य से च्युत न होने लगेगा, जो प्रव्रज्या ग्रहण करते समय परिभ्रमण करने का उत्तर दायित्व निभाने के लिए शपथ पूर्वक शिरोधार्य किया था। सरकारी अफसरो के अनिवार्यत: तबादले होते रहते हैं। इतने पर ही प्रवाह मान जल में स्वच्छता बनी रहती है। अवरुद्ध जलाशय सड़ते हैं। बँधकर स्थान विशेष पर बैठ जाने वाले सन्त भी आपत्ति ग्रस्त होकर कई बार तो सामान्य गृहस्थों जैसे परिग्रही एवं प्रपंची हो जाते हैं। गायत्री तीर्थों के संचालक लोग लोभ मोह के बंधनों में न बँधने पायें, किसी संस्थान पर आधिपत्य जमाने की दुरभि संधि न कर पायें, इसलिए आरंभ से ही स्थानान्तरण की व्यवस्था बना दी गई है। इसमें हानि इतनी ही है कि मोह का दबाव पड़ता है। लाभ असीम है।

यह निर्देश तब लिखे गये थे जब पीठें सीमित संख्या में बनानी थी। उस संख्या विस्तार होने से नियुक्ति और स्थानान्तरण के नियम में

कुछ व्यावहारिक परिवर्तन कर दिए गये हैं। संगठन की रीति-नीति पुस्तिका में उन्हें देखा जा सकता है।

नियुक्ति और निर्वाह

युगान्तरीय चेतना का प्रकाश देश के हर कोने में पहुँचा है और हर क्षेत्र में ऐसी जागृत आत्माओं को ढूँढा जा सकता है जिनने नव सृजन की प्रेरणाएँ उभारी हों, तलाश करने पर ऐसे दो व्यक्ति ढूँढ लेना कोई मुश्किल काम नहीं है। परिव्राजक यदि अपने क्षेत्र से निकाले जायें तो वे अधिक उपयोगी होंगे, यहाँ स्पष्ट करते हुऐ वे अखण्ड ज्योति मई १९७९ में लिखते हैं-

व्यवस्थित और नियमित सेवा साधना में संलग्न रह सकें ऐसे सेवा भावियों में उपार्जन के उत्तरदायित्व से मुक्त व्यक्ति भी हो सकते हैं। जिनके ऊपर कोई पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं हैं। जिनके बच्चे स्वावलम्बी बन गए हैं अथवा पूर्व संचित संपदा इतनी है कि ब्याज-भाड़े से ही निर्वाह चल सकता है। इन्हें वानप्रस्थों जैसी रीति अपनाने के लिए सहमत किया जाना चाहिए।

इस प्रकार के सेवाभावी और स्वावलम्बी व्यक्ति न मिले, तो ऐसे व्यक्ति भी ढूँढे और नियुक्त किये जा सकते हैं, जिनके लिए ब्रह्मणोचित निर्वाह की व्यवस्था प्रज्ञा संस्थान करें। घर की महिलाएँ यदि चाहें तो कुछ कमा या बना सकती हैं। कुछ संचित सम्पत्ति से ब्याज उपार्जन हो सकता है, जो कम पड़े उसकी व्यवस्था प्रज्ञा संस्थान करे।

शक्तिपीठों से जुड़े परिव्राजकों की निर्वाह व्यवस्था के कई स्तर हैं। परिवार के लिए जिन्हें कुछ भेजना नहीं पड़ेगा, प्राय: वैसे ही लोगों को प्राथमिकता दी जा सकती है। सामान्यतया यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि स्थायी कार्यकर्त्ताओं के निर्वाह का प्रबन्ध शक्तिपीठ करें। इनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो घर से अपना निर्वाह मँगाते रह सकें। हर शक्तिपीठ में एक वानप्रस्थ पत्नी समेत रहेगा। बच्चे उसके साथ नहीं होंगे। यह पति-पत्नी मिलकर पूजा आरती से लेकर अतिथि सत्कार

तक की स्थानीय व्यवस्था संभालेंगे आगन्तुकों के साथ सत्संग, परामर्श का क्रम भी यह लोग चलायेंगे और साहित्य केन्द्र का उत्तरदायित्व भी इन्हीं के कंधों पर होगा। इसके अतिरिक्त चार अन्य परिव्राजक रहेंगे। चारों के पास साइकिलें होंगी। दो-दो की जोड़ियों में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सम्पर्क क्षेत्र में जायेंगे और एक-एक दिन एक-एक गाँव में रुकेंगे। इनके निवास, निर्वाह का प्रबन्ध शक्तिपीठ में रहेगा। इनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी जन्म-भूमि समीप ही है और जो रात्रि को घर पहुँचने, दिन ड्यूटी सँभालने का क्रम चला सकते हैं। ऐसी दशा में घर और शक्तिपीठ दोनों को संभालना भी सम्भव हो सकता है और परिवार के लोगों का विरोध भी हल्का हो सकता है। ऐसे लोगों का निर्वाह व्यय इस प्रकार भी किया जा सकता है, जिससे कि उनके परिवार को भी थोड़ी सहायता मिल सके।

निर्वाह व्यय के सम्बन्ध में सबको एक लाठी से नहीं हाँका जा सकता। परिस्थिति की भिन्नता को ध्यान में रखना होगा। किन्तु इतना अवश्य है कि उपयुक्त युग शिल्पियों में से अब किसी को भी यह असमंजस नहीं रहेगा कि वे निर्वाह की व्यवस्था न कर पाने के कारण समय की पुकार में योगदान दे सकने से वंचित रह गये।

इसके लिए सक्षम भावनाशीलों को उत्साह पूर्वक आगे आना चाहिए। इस प्रसंग में पूज्यवर अखण्ड ज्योति फरवरी ७९, पृष्ठ-५३,५४ पर लिखते हैं-

युग संध्या की यह विशिष्ट घड़िया हैं। इनमें नवसृजन हेतु योगदान करने की युग पुकार को अनसुनी नहीं ही किया जाना चाहिए। जागृत आत्माओं को नव सृजन का आमंत्रण अन्तरिक्ष से उतरा है। इसे स्वीकार करने में हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है। इस तथ्य को जो जितनी जल्दी समझ लेगा वह उतनी ही बुद्धिमत्ता का परिचय देगा।

नव सृजन के लिए समयदान यही है कि महाकाल की माँग को पूरा करने के लिए जागृत आत्माओं की साहसिकता को उमंगा ही चाहिए।

सुदामा को बगल में दबी चावलों की पोटली देनी पड़ी थी, कर्ण ने मुँह में लगे हुए दाँत उखाड़े थे, बलि और हरिश्चन्द्र को राज सिंहासन खाली करने पड़े थे, शबरी को बेरों से और गोपियों को दधि-मख्खन से हाथ धोना पड़ा था। दरिद्र विदुर बथुए का शाक परोसने की ही स्थिति में थे पर जो दे सकते थे देने में कृपण न बने। साधन न सही श्रम और मनोयोग तो हर किसी के पास हो सकता है इसे तो गीध, गिलहरी और रीछ वानर सरीखे साधनहीन भी प्रस्तुत कर सकते हैं। समयदान की माँग ऐसी है, जिसे हर भावनाशील सहज ही प्रस्तुत कर सकता है। व्यस्तता, दरिद्रता, चिन्ता समस्या आदि के बहाने गढ़ने हो तो बुद्धिकौशल को इशारा करने भर की देर है। गढ़ने और ढालने में दिमाग की फैक्टरी इतनी तेज है कि पुण्य प्रयोजन में सहयोग न दे सकने के पक्ष में दलीलों और कारणों का एक से एक विचित्र बहाने गढ़कर खड़े कर देगी।

तथ्य दूसरे ही हैं। जिन्हें कुछ करना होता है वे घोर व्यस्तता के बीच भी अपने प्रिय प्रसंग के लिए कुछ कर गुजरने के लिए सहज ही अवसर प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ तक कि दरिद्रता, रुग्णता, व्यस्तता से लेकर समस्याओं के जाल जंजाल तक के कुछ न कुछ करते रहने में बाधक नहीं बन सकते। ऐसे भावनाशीलों की कमी नहीं जो उलझनों और कठिनाइयों से निपटने की तरह ही अन्तरात्मा की, महाकाल की युग पुकार की-गरिमा स्वीकार करते हैं और उसे सर्वोपरि समस्या आवश्यकता मानते हैं। प्रयासों में प्रमुखता सदा उन्हें मिलती हैं जिन्हें अन्तःकरण द्वारा महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

संचालकों से अपेक्षाएँ

पू. गुरुदेव ने अपने संगठन को पारिवारिक आधार पर विकसित किया है। पीठों का संचालन भी जागरूक पारिवारिक तंत्र के द्वारा ही चलाया जाना जरूरी है। पीठों के निर्माण, रख रखाव, कानूनी नियमों की आपूर्ति आदि के साथ क्षेत्र में सक्रिय समयदानियों-परिव्राजकों के साथ तालमेल बिठाते हुए आगे बढना सभी के लिए अभीष्ट है। इस संदर्भ में वे प्रज्ञा अभियान जून १९८१ में लिखते हैं-

कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति के बाद भी संचालकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उन्हें ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति मिल जाएगे, जो संस्थान की गतिविधियों को कुशलतापूर्वक संचालित करने का दायित्व पूरी तरह वहनकर सकेंगे। संचालकों को भवन निर्माण के बाद भी उसी तत्परता और कुशलता के साथ संस्थान की गतिविधियों और प्रवृत्तियों में ऊचि लेना चाहिए जैसी भवन निर्माण के समय ली जा रही है।

नियमित विधि व्यवस्था के लिए तदनुरूप व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए और उन्हें उस क्षेत्र को जागृत कर देने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों से संपर्क साधने का काम सौंपा जाय। प्रज्ञा संस्थानों की स्थानीय दिनचर्या एवं विधिव्यवस्था सम्हालने के अतिरिक्त वे कार्यकर्त्ता और कुछ करेंगे यह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। उसके लिए संचालकों को स्वयं सजग और तत्पर रहना होगा, यही नीति उपयुक्त है। प्रशासन का सारा ढर्रा इसी प्रकार चल रहा है, चलता है। वहाँ चुने हुए प्रतिनिधि नीति-निर्धारण करते हैं, उनके क्रियान्वयन का उत्तर दायित्व विभागीय सचिवों पर छोड़ते हैं। उनका समय दफ्तर सम्हालने में नहीं वरन् जनसम्पर्क करके वातावरण बनाने में लगता है। प्रज्ञा संस्थानों में भी यही नीति अपनानी पड़ेगी। मंदिरों की वर्तमान व्यवस्था भी इसी प्रकार चल रही है। ऐसी पद्धति से अलग हट कर विशुद्ध आदर्शवादी कार्य पद्धति अपनाना वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव नहीं

है। समय बदलने पर ही वे परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी, जब सेवाभावी समयदानी बिना किसी वैतनिक नियुक्ति के मिल जुलकर कार्य सम्पन्न कर लिया करेंगे। अन्य संस्थाओं को भी क्लर्क, चपरासी, प्रचारक आदि नियुक्ति करने पड़ते हैं। समय को देखते हुए प्रज्ञा संस्थानों को भी फिलहाल यही व्यवस्था अपनानी चाहिए। प्रथम सम्पर्क साधने और सहमत करने का उत्तरदायित्व संचालकों का ही है। बीच बीच में उन्हें ही इन लोगों से मिलने-जुलने और विचार विनिमय करते रहने का क्रम भी चलाना होगा। जो प्रभावित होते चलें उनको जन्म दिन मनाने के लिए सहमत करने तथा उसकी व्यवस्था बनाने का काम भी संचालकों का है। नियुक्त कार्यकर्त्ता तो बताये काम को पूरा करने के लिए भागदौड़ कर सकते हैं। उसके लिए खाली समय वाले सेवाभावी व्यक्ति पूरे अथवा आधे समय के लिए मिशनरी भावना से या सामान्य पारिश्रमिक देकर नियुक्त किये जा सकते हैं।

प्रज्ञापीठों पर नियुक्त किये जाने वाले कार्यकर्ताओं पर ही सारी जिम्मेदारियाँ छोड़ कर स्वयं निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए। प्रज्ञापुत्रों को प्रज्ञा संस्थान के संचालकों को, संस्थान की गतिविधियों तथा प्रवृत्तियों के लिए सदैव अग्रणी भूमिका निभाने में तत्पर रहना चाहिए।

पीठें समर्थ तंत्र की सशक्त अंग बनें

युगऋषि के अनुसार शक्तिपीठों की स्थापना ईश्वरीय युगनिर्माण अभियान को वाञ्छित गति देने के लिए सशक्त ऊर्जा केन्द्रों के रूप में की गई है। स्पष्ट है कि ये कोई सामान्य पूजा केन्द्र नहीं, और न ही ये महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से बनाए गए संस्थान हैं। इन्हें ईश्वरीय योजना के अनुसार, ऋषि अनुशासन के अन्तर्गत नैष्ठिक सृजन साधकों-शिल्पियों की छावनियों के रूप में स्थापित और विकसित किया जा रहा है। ये एक महान् उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध, समर्थ एवं व्यापक तंत्र के सफल, प्रामाणिक अंग-अवयव हैं। इन्हें इसी अवधारणा के अनुसार उनकी गरिमा के अनुरूप विकसित एवं प्रयुक्त

किया जाना है। गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना के रजत जयंती वर्ष में नैष्ठिकों के संगठित तंत्र की हर इकाई को इन्हें इसी स्तर पर लाने के लिए संकल्पित योजनाबद्ध प्रयास करने हैं तथा एक वर्ष में अपने संकल्प के अनुसार निर्धारित स्तर तक उन्हें पहुँचा देना है।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि इन्हें महान नैतिक दायित्वों की स्वीकारोक्ति के रूप में स्थापित किया गया है। इन दायित्वों का क्षेत्र बहुत विशाल एवं विविधता पूर्ण है। इस संदर्भ में पीठों से जुड़े नैष्ठिक जिम्मेदार परिजन केन्द्र एवं क्षेत्रीय संगठन इकाईयों के सहयोग से अपने-अपने लक्ष्य बनाएँगे और पूरे करेंगे। युगऋषि के निर्देशानुसार कहाँ, किन परिस्थितियों में क्या किया जाय? इसे क्रमशः स्पष्ट किया जाता रहेगा। इसी के साथ पीठों से जुड़े कुछ विधिक (कानूनी) दायित्व हैं। पीठों को पू. गुरुदेव द्वारा निर्मित न्यास-नियम (ट्रस्ट डीड) के अनुसार गायत्री परिवार ट्रस्टों के नाम से ट्रस्ट पंजीकृत कराए गए हैं। इन सभी ट्रस्टों को भारतीय ट्रस्ट अधिनियमों के अनुसार ट्रस्ट की विधिक व्यवस्था बनाने की जिम्मेदारी उठानी होती है। (इस पुस्तक को विस्तार से समझने के लिए ट्रस्ट बुक पुस्तक देखें।)

सारांश यह है कि शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों को समर्थ तंत्र के सबल अंग बनाने के लिए उनसे जुड़े परिजनों को दोनों प्रकार के दायित्वों १-नैतिक दायित्व २-विधिक दायित्वों की पूर्ति की जिम्मेदारी उठानी होती है। पीठों के रजत जयंती वर्ष में हर क्षेत्र में प्राणवान संगठित इकाई को, वर्तमान पीठों को अपने कार्यक्षेत्र में इन दोनों दृष्टियों से न्यूनतम प्रामाणिकता के स्तर तक तो ले आने की कार्ययोजना बना ही लेनी चाहिए।

जिम्मेदारी उठाएँ, सहयोग बढ़ाएँ

इस कार्य के लिए हर प्राणवान संगठित इकाई स्वतः अपनी जिम्मेदारी अनुभव करे और पूरा करने की पहल करे। कोई अन्य पहल करे, इसकी प्रतीक्षा में समय खराब न करें। स्वयं पहल करें तो क्षेत्र के अन्य प्राणवान परिजनों को विश्वास में लें तथा सहयोग पूर्वक योजना

को गति दें। यदि किसी ने पहल कर दी है तो उसके साथ सहयोग करें। इन कार्यों के लिए संगठन के अन्तर्गत ब्लॉक, जिला, उपजोन या जोनल स्तर की संयुक्त समन्वय समितियों के साथ सम्पर्क बनाए रखें। यदि क्षेत्र में ऐसी कोई इकाई नहीं है, तो संगठन/ शक्तिपीठ कार्यालय, शान्तिकुंज के सहयोग से कार्य को आगे बढ़ाएँ।

ध्यान रहे पूज्य गुरुदेव के युगनिर्माण आन्दोलन को गति देने के लिए गायत्री शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों की स्थापना की गई है। इनसे जुड़े परिजनों का यह नैतिक दायित्व बनता है कि वे पीठों को युगऋषि के निर्देशानुरूप विकसित करें, प्रभावी बनाएँ। इसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों की समर्थ टोली होनी चाहिए। उनके दायित्वों की दो मुख्य धाराएँ हैं-

१. वहाँ समयदानियों, नैष्ठिकों का इतना समर्थ तंत्र विकसित हो कि पीठ द्वारा अपने लिए निर्धारित क्षेत्र में गाँव-गाँव, घर-घर तक नवसृजन की प्रेरणा एवं ऊर्जा का संचार करते रहने की जिम्मेदारी निभाई जाती रहे। उसके लिए प्रचार, साधना, प्रशिक्षण, आन्दोलनपरक विभिन्न गतिविधियों का सार्थक संचालन होता रहे।

२. उक्त कार्य की सुविधा के लिए जो चल-अचल सम्पत्ति ट्रस्ट के अन्तर्गत खड़ी की गई है, वह इस कार्य की विधि व्यवस्था के अनुरूप प्रामाणिक एवं पारदर्शी बनी रहे।

पूज्य गुरुदेव ने इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सूत्र एवं अनुशासन निर्धारित किए हैं। उनका कथन है कि यदि पीठ के नाम पर भवन बना लिए जायें और अपने सम्बद्ध परिजन अपने नैष्ठिक और विधिक दायित्वों के प्रति जागरूक नही हैं, तो उसे अच्छे शब्दों में '**बाल कौतुक**' तथा कड़े शब्दों में '**युग देवता के साथ छल, धोखेबाजी**' जैसा पातक कहा जा सकता है। वे जनता एवं प्रशासन दोनों की दृष्टि में अपराधी होते हैं। यदि कानूनी व्यवस्था, रख-रखाव नियमानुसार ठीक है, किन्तु नैतिक, सामाजिक कर्त्तव्यों का अनुपालन नहीं हो रहा है, तो उन्हें समाज द्वारा धूर्त की श्रेणी में रखा जा सकता है। इससे भिन्न यदि वे सामाजिक

गतिविधियाँ तो चलाते हैं, किन्तु विधिक व्यवस्था ठीक नहीं है, तो वे कभी भी प्रशासनिक कानूनी शिकंजे में पकड़े जा सकते हैं और उन्हें भला होते हुए भी मूर्ख समझा जायेगा।

आज नैतिक परिजनों से अपेक्षा की जा रही है कि पीठों के रजत जयंती वर्ष में अपने क्षेत्र की प्रत्येक पीठ को इन दोनों दृष्टियों से ठीक-ठाक स्तर तक लाने के लिए प्रतिबद्ध हों। नैतिक दायित्वों का बोध तो पिछले आलेखों में पूज्य गुरुदेव के निर्देशों के आधार पर हो ही गया होगा, आगे भी उस संदर्भ में बिन्दुवार विचार प्रस्तुत किये जाएँगे। यहाँ थोड़ा प्रकाश विधिक, दायित्वों पर डाला जा रहा है।

महत्ता एवं मर्यादा समझें

युग निर्माण मिशन के बढ़ते कार्य के लिए अपने भवनों की जरूरत पूरी करने के लिए पीठों का निर्माण किया गया। क्षेत्र में कार्य विस्तार की जिम्मेदारी तो जमीनी कार्यकर्त्ता (फील्ड वर्कर्स) ही उठाते हैं। उन्हें साधना, प्रशिक्षण, आन्दोलन आदि चलाने की सुविधा देने के लिए विधि सम्मत ट्रस्ट बनाकर पीठें खड़ी की गईं। उनकी विधिक व्यवस्था सँभालने के लिए न्यासी (ट्रस्टी) नियुक्त किए गए। उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने दायित्वों को तत्परता पूर्वक पूरा करें, ताकि कार्यकर्त्तागण सहज उत्साह के साथ अभियान को गति देने का काम करते रह सकें। जनता के संसाधनों से लोकमंगल के कार्यों का संचालन होता रहे, यह सरकार भी चाहती है। इसलिए लोकसेवी ट्रस्टों को अनेक सुविधाएँ देने के प्रावधान भी बनाएँ गए हैं।

पिछले दिनों प्रशासनिक सुविधाओं, छूटों का लाभ उठाने के लिए स्वार्थी तत्वों ने तमाम चाल बाजियाँ चलीं। ट्रस्टों को मिलने वाली सुविधाएँ तो लीं, पर लोकसेवी की जिम्मेदारियाँ उठाई नहीं। इससे प्रशासन को कड़ा रवैया अपनाना पड़ा है। ट्रस्टों के नियमों को कड़ा करने का क्रम चालू हो गया है। यदि उन नियमों के अध्ययन और अनुपालन में कमी रही तो कानूनी दृष्टि से उन्हें अपराधी मानकर

कार्यवाहियाँ की जा सकती हैं। हमें प्रशासन की कठिनाइयाँ समझते हुए कानूनी अनुशासनों का ठीक-ठीक अनुपालन करना चाहिए।

क्या करें ?

* क्षेत्र की संगठित इकाईयाँ प्रखण्ड, जिला या उपजोन या जोन स्तर की समन्वय समितियों में विधि व्यवस्था तथा हिसाब-किताब (एकाउण्ट) की गहराइयाँ समझने वाले भी कुछ परिजनों को शामिल करें।
* क्षेत्र में जहाँ-जहाँ पीठें हैं, उनसे सम्पर्क करें। ट्रस्टियों को उनकी जिम्मेदारियाँ और मर्यादाएँ समझाने का क्रम बनाएँ। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों को विधिक सहयोगी समीक्षक बनाकर भेजें। प्रत्येक पीठ से सम्बन्धित निम्नानुसार बिन्दुओं का अध्ययन करें तथा वांछित सुधार प्रक्रिया चलाएँ :-
* क्या पीठ का ट्रस्ट केन्द्रीय ट्रस्ट के आधार पर ही पंजीकृत है ?
* क्या ट्रस्ट की बैठकें नियमित होती हैं तथा उनका ब्योरा मिनिट बुक में ठीक से अंकित किया जाता है ?
* क्या ट्रस्ट के आय-व्यय का हिसाब किताब सरकार के निर्धारित मानकों के अनुसार किया जाता है ? वर्ष में चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट द्वारा उसका ऑडिट होकर रिपोर्ट पेश की जाती है।
* जिस भूमि पर पीठ का निर्माण किया गया है, क्य उसे विधि सम्मत ढंग से ट्रस्ट के अधिकार में ले लिया गया है या नही ?
* ट्रस्टियों में आपस में तालमेल है या नहीं ? वे अपने दायित्वों एवं सीमाओं को समझते हैं या नहीं ?
* दिवंगत या निष्क्रिय ट्रस्टियों के स्थान की पूर्ति विधि सम्मत ढंग से की गयी है या नहीं ?
* ट्रस्टियों एवं जमीनी कार्यकर्त्ताओं के बीच तालमेल है या नहीं ?

नैतिक विधि सहगमन

* यदि इनमें से कहीं भी कमी है तो सम्बन्धित व्यक्तियों को समझाकर क्षेत्रीय संगठित इकाई अथवा जरूरत पड़ने पर केन्द्र के प्रभाव का

उपयोग करके उन्हें ठीक किया जाना चाहिए। किसी भी प्रकार की अनियमितता कानूनी अपराध है। हमारे तंत्र को नैतिक के साथ कानूनी स्तर पर भी प्रामाणिक एवं पारदर्शी बनाना जरूरी है। पीठों के रजत जयंती वर्ष में हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि एक भी पीठ कानूनी दृष्टि से कमजोर स्थिति में न रह जाए। अगले दिनों कानूनी शिकंजे और कड़े होते जाने हैं। जानकारी न होने को कानूनी दृष्टि में क्षम्य नहीं माना जाता। इसलिए हमें अपनी गरिमा की रक्षार्थ हर दृष्टि से सटीक होना चाहिए।

* पीठों का मुख्य कार्य बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक क्रान्तियों को गतिशील बनाना है। यह कार्य तो नैष्ठिक समयदानी कार्यकर्त्ताओं से ही संपन्न होंगे। लेकिन पीठ की विधिक प्रामाणिकता की रक्षा ट्रस्टीगण करते हैं, उसके बिना सारा तंत्र सरकारी दृष्टि से अप्रामाणिक माना जा सकता है। इसलिए हर पीठ पर नैतिक एवं विधिक जिम्मेदारी उठाने वालों के बीच स्नेह भरा सुन्दर तालमेल आवश्यक है। न तो सारी जिम्मेदारी ट्रस्टी उठा सकते हैं और न क्षेत्रीय कर्मठ परिजन। अस्तु दोनों को एक-दूसरे का महत्त्व समझते हुए, एक-दूसरे को सम्मान देते हुए आगे बढ़ते रहने की रीति-नीति अपनानी होगी।

* अस्तु रजत जयंती वर्ष की अवधि में जहाँ पीठों की, ट्रस्टों की विधिक व्यवस्था को संभाल लेना है, वहीं विधिक और नैतिक कर्मियों के बीच समन्वित तंत्र भी स्थापित कर देना है। इस संदर्भ में पर्याप्त दिशा निर्देश 'संगठन की रीतिनीति' नामक पुस्तिका में दिए गये हैं। यहाँ संक्षप में उनका संकेत किया जा रहा है।

* पीठ पर विधिक समिति 'ट्रस्ट मण्डल' के पूरक कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की कार्यकारिणी भी सक्रिय होनी चाहिए, उसे संयुक्त समन्वय समिति कहा गया है। क्षेत्र में कार्य विस्तार, समयदानियों के चयन, प्रशिक्षण, नियोजन का कार्य उक्त कार्यकारिणी ही संभालती है। ट्रस्ट को उनके कार्य के लिए हर संभव सुविधा को विधिक स्वरूप देना होता है। दोनों

में समन्वय, सहगमन जरूरी है। कार्यकारिणी की बैठकों में ट्रस्ट मण्डल के प्रतिनिधि भी शामिल हों तथा ट्रस्ट मण्डल उक्त समिति को विश्वास में लेकर चले, पारदर्शी व्यवस्था बनाए।

** पीठ के क्षेत्र में हर मण्डल ट्रस्ट की रसीदों पर अंशदान एकत्रित करे, उसका ठीक-ठीक हिसाब रखे। मासिक हिसाब ट्रस्ट के एकाउण्टेण्ट के पास जमा करे। एकाउण्ट से सम्बन्धित व्यक्ति मण्डल वालों को हिसाब किताब रखने एवं पेश करने की प्रामाणिक रीति-नीति समझाएँ।*

** कार्यकारिणी पीठ की व्यवस्था के लिए समयदानी उपलब्ध कराये। आश्रम व्यवस्था, संगठन व्यवस्था तथा आन्दोलन व्यवस्था के लिए उपयुक्त समितियाँ बनाए, सबके बीच व्यावहारिक तालमेल रहे।*

** रजत जयंती वर्ष की अवधि में हर पीठ पर इतनी व्यवस्था हो ही जाय, यह लक्ष्य लेकर चलना चाहिए। जो इन व्यवस्था में नहीं आयेंगे उन्हें युगऋषि के तंत्र के अन्तर्गत 'पीठ' की मान्यता नहीं दी जा सकेगी। उन्हें परम्परागत गायत्री मंदिर भर माना जा सकेगा। संचालक गण अपनी जिम्मेदारियाँ समझने के लिए 'संगठन की रीति-नीति एवं लोक सेवियों के लिए दिशाबोध पुस्तिकाओं का अध्ययन करें।)*

महानता के श्रेयाधिकारी देवदूतों के उत्तराधिकारी बनने का लाभ उन्हें ही मिलता है, जो आदर्शवादियों की अग्रिम पंक्तियों में खड़े होते हैं और बिना किसी के समर्थन, विरोध की परवाह किए आत्म-प्रेरणा के सहारे स्वयमेव अपनी दिशा धारा का निर्माण-निर्धारण करते हैं।

-परम पूज्य गुरुदेव

(प्रज्ञा अभियान का दर्शन, स्वरूप, कार्यक्रम- ९.१२)

सृजन सैनिकों की छावनियाँ सिद्ध हो

समय की माँग पर हर समय में विभिन्न आन्दोलन, अभियान उभरते और चलते रहे हैं। प्रत्येक का लक्ष्य युगीन समस्याओं का समाधान निकालते हुए वाञ्छित प्रगति की दिशा में बढ़ते रहना होता है। चूँकि समय की माँग हर बार कुछ नए स्वरूप में उभरती है, इसलिए उसकी पूर्ति हेतु चलने वाले अभियान को भी अपने लिए स्वयं ही मार्ग बनाने और अनुभव जुटाने पड़ते हैं। इसीलिए प्रारंभ में प्रत्येक अभियान की स्थिति उस बालक जैसी होती है, जिसे कुछ करने का उत्साह तो बहुत होता है, किन्तु अनुभव नहीं। अनुभव की कमी से झिझकने और बहकने की संभावनाएँ भी हर कदम पर रहती हैं। उन्हें सुलझाते हुए ही आगे बढ़ना होता है। कालान्तर में अनुभव पकने लगते हैं, अनुभवी जुटने लगते हैं तो अभियान में क्रमशः प्रौढ़ता आने लगती है। किसी अभियान की रजत जयंती मनाने का तात्पर्य ही होता है कि उस तंत्र से जुड़ा हर व्यक्ति अभियान की प्रौढ़ता का बोध करे तथा तद्नुरूप उसकी गरिमा बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध होकर आगे बढ़े।

गायत्री शक्तिपीठ अभियान के साथ भी ऐसा ही है। प्रारंभ में जब पूज्य गुरुदेव ने शक्तिपीठ योजना प्रस्तुत की थी, तो एक नए कार्य के प्रति उत्साह के साथ ही एक नयी झिझक, एक नया संकोच भी उभरा था। लगता था 'शक्तिपीठ' बनाना तो बड़े समर्थों और तपस्वियों से कम का कार्य नहीं है, हम उसे कैसे करेंगे? किन्तु ऋषियुग्म के प्रति प्रेम और विश्वास के आगे वह टिका नहीं, संकल्प उभरने लगे। माता-पिता जिस प्रकार विकासमान बालकों को उनके अटपटे प्रयासों की अनदेखी करके भी प्रोत्साहन देते रहते हैं, उसी प्रकार ऋषियुग्म ने भी किया। छोटे-बड़े हर व्यक्ति और प्रयास को प्रोत्साहन एवं दिशा देने का क्रम बनाए रखा। क्रम आगे बढ़ता गया।

प्रारंभिक क्रम उसी प्रकार हमेशा नहीं चलाया जाता। बच्चे बड़े

होते हैं, अनुभव जुटने लगता है तो वही अभिभावक, जो पहले बच्चों के अनगढ़ प्रयासों को भी प्रोत्साहन देते थे, वे ही उनके कार्यों में कमी निकालने और कार्य में सुगढ़ता लाने के लिए दबाव देने का क्रम अपनाते हैं। यदि बालक नहीं समझता तो डाँट-फटकार आदि का भी प्रयोग करते हैं। ऋषियुग्म ने भी ऐसा ही किया। पहले दिशा के साथ प्रोत्साहन दिया, किन्तु जब उत्साह के अतिरेक में दिशा-निर्देशों की अनदेखी होने लगी तो नाराजी भी जताई। उन्होंने यहाँ तक भी कह दिया'' मैने ही तुम लोगों को गायत्री शक्तिपीठों में गायत्री मंदिर एवं मूर्ति स्थापना के लिए प्रेरित किया था, किन्तु यदि तुमने उन्हें आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न सृजन केन्द्रों के रूप में विकसित करने की जिम्मेदारी नहीं संभाली, तो मैं ही वहाँ से मूर्तियाँ हटवाकर उन्हें अन्य लोकोपयोगी कार्यों के लिए खाली करवा दूँगा।''

स्पष्ट है कि वे बच्चों के विकास में तो रुचि रखते थे, किन्तु उन्हें मात्र बाल-कौतुक में ही उलझे नहीं रहने देना चाहते थे। पीठों की स्थापना का रजत जयंती वर्ष हम सबको यही संदेश दे रहा है कि अब अपने प्रत्येक क्रिया कलाप में प्रौढ़ता, शालीनता, व्यवस्था का बेहतर समावेश किया जाना जरूरी है।

दायित्वों का बोध एवं अनुपालन

अभी तक परिजनों को गायत्री शक्तिपीठ अभियान से जुड़े विभिन्न दायित्वों का बोध विविध कोणों से कराने का प्रयास किया गया। दायित्वों के बोध और उनका अनुपालन, इन दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। बिना बोध के अनुपालन कैसे होगा? इसी प्रकार अनुपालन नहीं किया गया तो बोध किस काम का? यह दोनों क्रम एक-दूसरे के पूरक हैं, अभिन्न हैं, किन्तु इन दोनों के लिए प्रयास भिन्न-भिन्न ढंग से बराबर करते रहने पड़ते हैं।

***बोध**-के लिए संवेदना तथा समझदारी का उपयोग करना तथा स्तर बढ़ाना पड़ता है।*

अभ्यास-के लिए समझदारी के साथ ईमानदारी से प्रयास, पुरुषार्थ जोड़ना होता है।

प्रगति-के लिए ईमानदार, प्रयासों के साथ जिम्मेदारी एवं बहादुरी के गुणों को विकसित और प्रयुक्त करना पड़ता है।

यह तीनों आपस में जुड़े हैं, बोध है तो अभ्यास किया ही जाना चाहिए। अभ्यास है तो प्रगति होनी ही चाहिए। प्रगति के हर चरण के साथ नये दायित्वों का बोध करना पड़ता है। नये बोध के साथ नये अभ्यास और प्रगति के नये लक्ष्य सामने आ जाते हैं। इसीलिए किसी भी अभियान को आगे बढ़ाने के लिए दायित्वों का बोध और उनके अनुपालन का सतत क्रम चलाया जाना जरूरी होता है। ऐसी ही अपेक्षा युग निर्माण अभियान से जुड़े प्रत्येक साधक-सैनिक से की जा रही है।

** प्रारम्भ में बोध हुआ कि युग निर्माण अभियान का विस्तार हो रहा है। उससे जुड़ने वाले साधकों-सैनिकों के लिए साधना, प्रशिक्षण एवं प्रसार के लिए अपने केन्द्रों की जरूरत है, तदनुसार युगशक्ति गायत्री के श्रद्धा-प्रतीकों, युगधर्म के प्रतीक यज्ञ स्थलों सहित पीठों का निर्माण शुरू किया गया।*

** बोध हुआ कि सामाजिक सम्पत्ति के संवर्धन एवं उपयोग के कुछ कानूनी नियमों का पालन जरूरी है, अस्तु उनके लिए ट्रस्टों की स्थापना की गई। इसके लिए नियमावलियाँ तैयार की गईं। इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था बनी।*

** बोध हुआ कि श्रद्धा केन्द्रों की गतिविधियों के संचालन तथा श्रद्धालु-साधकों को स्नेह, सम्मान, दिशा देने के लिए सत्पात्र व्यक्ति चाहिए। अस्तु प्रगतिशील विचारों के सेवाभावी परिव्राजकों के प्रशिक्षण एवं नियुक्ति का क्रम बनाया गया।*

** बोध हुआ कि प्रत्येक पीठ की गतिविधियाँ चलाने के लिए साधनों तथा विभूतियों की जरूरत पड़ेंगी, उसकी पूर्ति हेतु अंशदान*

तथा समयदान की परिपाटी हर पीठ से जोड़ी गई।

* बोध हुआ कि व्यक्ति एवं संस्थानों को अपने विकास के लिए स्वयं जिम्मेदार भी होना चाहिए तथा अभियान को समर्थ बनाने कि लिए एक-दूसरे के साथ तालमेल बिठाकर चलना चाहिए। अस्तु संगठन की रीतिनीति बनाई एवं लागू की गई।

* इसी प्रकार और दायित्वों के बोध और उनके अनुपालन का क्रम आगे बढ़ता गया। कानूनी व्यवस्था के साथ आश्रम व्यवस्था, संगठन व्यवस्था तथा आंदोलन व्यवस्था बनाने के विविध प्रयोग प्रारम्भ किये गये। हर पीठ पर साधना, स्वाध्याय, संयम, संस्कार, सेवा आदि कार्यों के लिए प्रचार, अभ्यास, प्रशिक्षण एवं विकास परक योजनाओं को मूर्तरूप दिया जाने लगा।

इन्हीं सब प्रक्रियाओं ने शक्तिपीठ अभियान को एक प्रभावी और प्रौढ़ अभियान का रूप प्रदान किया। यह क्रम और भी अधिक व्यवस्थित तथा प्रभावी ढंग से चलाने के संकल्प के साथ पीठों का रजत जयंती वर्ष मनाने की योजना अवतरित हुई है।

नवीन महाभारत

पू.गुरुदेव ने बार-बार यह बात दोहराई है कि मनुष्य मात्र को उज्ज्वल भविष्य देने के लिए, भू पर स्वर्ग जैसी परिस्थितियों की स्थापना के लिए एक नया महाभारत युद्ध होना है। इस युद्ध में कोई शामिल हुए बिना रह न सकेगा। यह युद्ध हर क्षेत्र में, हर घर में लड़ा जायगा और हर मन में भी लड़ा जायगा। जो इसके लिए संकल्प पूर्व तैयार होंगे, वे शक्ति अनुदान पाएँगे और अग्रदूत बनने का श्रेय और गौरव प्राप्त करेंगे। जो उदासीन रहेंगे या बचने की कोशिश करेंगे, वे श्रेय-सौभाग्य तो गँवाएँगे ही, उन्हें अपेक्षाकृत अधिक परेशानी भी उठानी पड़ेगी। युग निर्माण अभियान इस युग में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस सुनिश्चित तथ्य का बोध कराने तथा श्रेय-सौभाग्य में भागीदार बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। शक्तिपीठों की स्थापना इसी

प्रतिबद्धता का निर्वाह भली प्रकार करने-कराने के लिए की गई है।

जब कोई राष्ट्र युद्ध में प्रवृत्त होता है, तो मात्र सैनिक ही युद्ध नहीं करते, प्रत्येक नागरिक को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उसमें भागीदार होना पड़ता है। सैनिकों की संख्या की वांछित आपूर्ति, उनके लिए संसाधनों की आपूर्ति, अपनी सुरक्षा, शत्रु की छद्म गतिविधियों को निरस्त करने की जागरूकता सभी को बरतनी पड़ती है। इन सब प्रक्रियाओं को सही ढंग से चलाने के लिए जगह-जगह सैनिक छावनियाँ स्थापित की जाती हैं। इन सैनिक छावनियों में एक ओर जहाँ सैनिकों की संख्या एवं उनकी गुणवत्ता बढ़ाने का क्रम चलता रहता है, तैयार सैनिकों को विभिन्न मोर्चों पर नियोजित करने की व्यवस्था बनाई जाती है, वहीं जन सामान्य को जागरूक रखने तथा आपदा नियंत्रण के लिए प्रशिक्षण देने का भी कार्य किया जाना है। शक्तिपीठों को युग सृजन महायुद्ध की सैनिक छावनियों की भूमिका निभानी है। उन्हें इसी के लिए तैयार किया जाना है। जो इस कसौटी पर खरे सिद्ध होंगे, उन्हें असाधारण श्रेय, सौभाग्य, सम्मान एवं संतोष प्राप्त होगा। जो खोटे सिद्ध होंगे उन्हें उपेक्षा, तिरस्कार, असंतोष, आत्म प्रताड़ना, पश्चाताप जैसी अशोभनीय एवं पीड़ादायी प्रक्रियाएँ झेलनी होंगी। हमें प्रयास यही करना चाहिए कि हमारे हिस्से में अवांछनीय दुर्भाग्य नहीं, वांछनीय सौभाग्य ही आए।

न्यूनतम लक्ष्य निर्धारित करें

पूर्व में पीठों को समर्थ तंत्र के सशक्त अंग बनाने की बात कही गई है। इस क्रम में अपने लिए अनिवार्य १. नैतिक एवं २. विधिक दायित्वों को समझने तथा उनके अनुपालन की व्यवस्था बनाने के लिए दिशा-निर्देश दिए गए हैं। यदि विधिक अनुशासनों का अनुपालन नहीं हुआ तो वे कानूनी दृष्टि से कमजोर रह जाएँगे। यदि नैतिक जिम्मेदारियाँ पूरी नहीं की गई, तो समाज तथा ऋषिसत्ता के साथ छल का पातक लगेगा।

प्रत्येक शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ से सम्बद्ध नैष्ठिक परिजनों को चाहिए कि अभी से रजत जयंती वर्ष की अवधि में करने योग्य न्यूनतम कार्य योजना मिलजुल कर बना लें। पीठ कितने क्षेत्र को अपने कार्य क्षेत्र के रूप में स्वीकार करे? उस क्षेत्र में आज की स्थिति क्या है? मिशन से किसी भी रूप में जुड़े नर-नारी कितने हैं? उनका पीठ से जुड़ाव कैसे पुष्ट हो? युग निर्माण की विविध गतिविधियों में भागीदारी के लिए उन्हें उत्साहित कैसे करें? समयदान एवं अंशदान के लिए उन्हें तैयार करने और उसका उपयोग करने के लिए क्या किया जाय? आदि बिन्दुओं पर विचार करना होगा तथा कार्ययोजना बनानी होगी।

योजना बनते ही प्रश्न उभरेगा कि यह सब जिम्मेदारियाँ कौन सँभालेंगे? कहा जा चुका है कि पीठों से जुड़े नैतिक दायित्व बहुत व्यापक हैं। न्यूनतम बिन्दु, जो ऊपर दिए हैं उनकी पूर्ति के लिए अपनी संख्या भी बढ़नी चाहिए तथा क्षमता भी। पूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण का आधार व्यक्ति निर्माण कहा है। अस्तु हर पीठ को व्यक्ति निर्माण की टकसाल तथा साधना एवं प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में तो विकसित करना ही होगा। हमारे अंदर एक संकल्प बार-बार उभरते रहना चाहिए - ***'हम ऐसा कर सकते हैं और ऐसा अवश्य करेंगे।***

यदि आदर्शों को मनवाने के लिए अपना आपा हमने सहमत कर लिया, तो निःसंदेह अगणित व्यक्ति हमारे समर्थक, सहयोगी,अनुयायी बनते चले जायेंगे। फिर युग परिवर्तन अभियान की सफलता में कोई व्यतिरेक शेष न रह जाएगा।

-परम पूज्य गुरुदेव

(वाङ्मय-युग निर्माण योजना दर्शन, स्वरूप १.२७)

सृजन का उत्साह और कौशल उभरे

युगऋषि के जीवन का उद्देश्य युग परिवर्तन के लिए समग्र क्रान्ति के सशक्त प्रवाह पैदा करना रहा है। ऐसा प्रवाह जो मनुष्य में देवत्व के उदय, मनुष्य मात्र के लिए उज्ज्वल भविष्य के लक्ष्य तक पहुँचे बिना रुके नहीं। उन्होंने समग्र क्रान्ति की तीन धाराओं की अनिवार्यता बताई है- १. बौद्धिक क्रांति २. नैतिक क्रांति ३. सामाजिक क्रांति। इन क्रान्तियों को गति देने के लिए उनके व्यक्तित्व के तीन आयाम समर्थ हैं। वे हैं क्रमशः वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ एवं आचार्य।

***विचार क्रांति** को गतिशील बनाने के लिए युगऋषि ने स्वयं को **वेदमूर्ति** रूप में व्यक्त किया। युगज्ञान की ऐसी प्रखर धाराएँ प्रवाहित कीं, जो जड़मति वालों को भी प्रचलित निष्कृष्ट चिंतन से उबार कर विवेक पथ पर ले आए। इस क्रांति के लिए सृजन सैनिकों को अपने **चिंतन** का स्तर इतना पवित्र और प्रखर बनाना होगा, जिसके आधार पर अनास्थावानों को भी आस्थावान् बनाया जा सके।*

***नैतिक क्रांति** को गतिशील बनाने के लिए युगऋषि का **तपोनिष्ठ** स्वरूप सक्षम है। नैतिक आस्थाओं का पोषण बिना तपशक्ति के संभव नहीं। उन्होंने जीवन में उपासना, साधना, आराधना के लिए समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश लगाने का सूत्र देकर युगानुकूल तप की प्रखर एवं प्रभावी जीवन्त परिभाषाएँ दीं। इस क्रांति को गति देने के लिए सृजन सैनिकों को अपने **चरित्र** को इतना परिष्कृत करना होगा, जो प्रज्वलित दीपक की तरह अपने स्पर्श से सम्पर्क में आने वाले दीपकों को ज्योतित करता रह सके।*

***सामाजिक क्रांति** को गतिशील करने के लिए युगऋषि का **आचार्य** स्वरूप उभरा। उन्होंने अपने द्वारा शोधित हर जीवन सूत्र का शिक्षण अपने आचरण से भी किया, आदर्शों को व्यावहारिक सिद्ध कर दिखाया। वे स्वयं क्रांति के पर्याय बने। सामाजिक क्रांति को वांछित*

गति देने के लिए युग सैनिकों को अपने **व्यवहार** को इतना सुरभित-शोधित करना होगा कि जो निकट आए वह जुड़ जाए। अपनत्व के नाते स्वयं भी कुछ किए बिना उससे भी रहा न जाए।

इस प्रकार युगऋषि की तीनों क्रांतियों के लिए उनके जीवन के तीन आयाम खुले तथा युग सैनिकों को अपने **चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार** की साधना को प्रखर-प्रभावी बनाते रहने के लिए सबल आधार उन्होंने दे दिए। शक्तिपीठों की स्थापना उन्होंने **समग्र क्रांति** के लिए त्रिविध क्रांतियों की समर्थ छावनियों के रूप में की। उनके निर्देश से बनी हर पीठ को अपने इन नैतिक दायित्वों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध और सक्षम होना ही चाहिए।

महत्व समझें दायित्व निभाएँ

युगऋषि के जीवन की दिशाधारा के ही अनुरूप उनके 'अपनों' के जीवन की दिशाधारा भी होनी चाहिए। युग साधक उनके 'निज जन' हैं तथा गायत्री पीठ उनके अपने 'निज स्थान' हैं। युगऋषि के नाते उनकी योजना **युग निर्माण योजना** तो पूरे युग के लिए है, किन्तु योजना को विस्तार देने की जिम्मेदारी तो उनके **निज जनों और निज स्थानों** को ही उठानी होगी। युग निर्माण अभियान को पूरा करने में तो युग की अधिकांश प्रतिभाओं -विभूतियों को अपनी-अपनी भूमिका निभानी होगी, किन्तु उन्हें इसके लिए सहमत-प्रेरित करने के लिए तो निज जनों को ही पहल करनी होगी।

यह कार्य सामान्य नहीं है। सामान्य मनःस्थिति से इसका महत्त्व समझना और दायित्व स्वीकार करना संभव नहीं। सामान्य स्थिति में तो उदासीनता के आकर्षण या अतिवाद के भटकाव का खतरा बना ही रहेगा। यदि उसे युगदेवता के साथ जुड़े होने का अहसास कराया जाय तो वह अपने आप पर 'इतराने' लगेगा तथा जब जिम्मेदारी उठाने को कहा जायेगा तो उससे 'कतराने' लगेगा। इस प्रकार इतराना और कतराना सामान्य मनःस्थिति वालों के लिए भले ही स्वाभाविक कहा जाय,

आत्मीय स्तर पर जुड़े 'युग साधकों' के लिए तो वह स्थिति अशोभनीय ही कही जायेगी। आत्मीय स्तर पर युगऋषि से जुड़ी जाग्रत आत्माओं की मानसिकता औरों से भिन्न ही होती है। वे अपने सौभाग्य पर इतराते नहीं, प्रभु कृपा का स्मरण करके कृतज्ञता पूर्वक विनम्र हो उठते हैं। फले वृक्षों की तरह झुकने लगते हैं। इसी प्रकार वे कार्य की कठिनाई देखकर उससे कतराते नहीं, बल्कि और अधिक उत्साहित होने लगते हैं। वे अपनी भूमिका हनुमान, जटायू, शबरी, गिलहरी की तरह निभाने के लिए हर क्षण तत्पर रहते हैं।

गायत्री शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों से जुड़े हर परिजन को इन दिनों विशेष रूप से अपने समय और युगधर्म के महत्त्व को अनुभव करना चाहिए तथा शक्तिपीठों से जुड़े महान दायित्वों को पूरा करने के लिए स्वयं को तैयार करना चाहिए। युग देवता के साथ जुड़े होने के नाते अपने सौभाग्य और कर्त्तव्यों का बोध सतत बना रहे, उसमें गहराई बढ़ती रहे। अपने दिव्य स्वरूप और कर्त्तव्यों के अनुरूप अपने अभ्यासों को गढ़ते रहने के रूप में अपनी जीवन साधना में प्रखरता आती रहे।

जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन, पाचन एवं स्वास्थ्य का क्रम है, वैसे ही मिशन के लिए 'बोध, अभ्यास एवं प्रगति' को मानकर चलना चाहिए। वर्तमान का बोध, बोध को काय ऊर्जा में बदलने के लिए अभ्यास तथा ऊर्जा विकास को प्रगति में लगा देने का क्रम चलता रहे, यह जरूरी है। यह क्रम प्रज्ञा पुत्रों के जीवन में भी होना चाहिए तथा प्रज्ञा संस्थानों के क्षेत्र में भी समाविष्ट होना चाहिए।

प्रामाणिक यंत्र और तंत्र बनें

इन दिनों युग शक्ति उसी प्रकार सक्रिय है जिस प्रकार लौकिक कार्यों के लिए बिजली प्रयुक्त होती है। कार्य कितना बड़ा और विविधतापूर्ण है, इसके अनुरूप ऊर्जा वितरण (पावर सप्लाई) की व्यवस्था बनाई जाती है। बड़े-बड़े ऊर्जा उत्पादन केन्द्रों (पावर हाउसों) से लेकर ट्रान्सफार्मरों और संचार उपकरणों-उपक्रमों का विकेन्द्रित सुसम्बद्ध

(डिसैण्ट्रलाइज्ड कोआर्डिनेटेड) तंत्र बनाया जाता है। छोटे-छोटे कार्यों के लिए स्वतंत्र यंत्र लगाए जाते हैं, किन्तु बड़े कार्यों के लिए विविध यंत्रों को कार्यशाला (वर्कशॉप या फैक्ट्री) का रूप दिया जाता है। यह सच है कि सारे कार्य विद्युत ऊर्जा ही करती है, किन्तु विद्युत ऊर्जा को विभिन्न क्रिया शक्तियों में रूपान्तरित (ट्रांस्फॉर्म) करने का कार्य यंत्रों और उनके समन्वित तंत्रों के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

युगशक्ति ईश्वरीय चेतना के रूप में युगानुरूप प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ऋषितंत्र ने उसको हर उपकरण-उपयोग क्षेत्र तक पहुँचाने की व्यवस्था बनाई है। जहाँ जिस प्रकार के यंत्र-उपकरण तैयार हो जाते हैं, उन्हें ऊर्जा देते रहने की व्यवस्था बनाई जाती है। इस दिव्य सृजन अभियान में युग साधकों, प्रज्ञापुत्रों को विभिन्न यंत्रों के रूप में, संगठित इकाईयों को कार्यशाला, फैक्ट्री आदि के रूप में तथा शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों को ऊर्जा संचार तंत्र के रूप में विकसित और कार्यरत होना है। इसी से युग सृजन की दैवी योजना साकार एवं सार्थक होनी है।

यह ठीक है कि सारे कार्य, सारा पुरुषार्थ बिजली ही करती है, लेकिन इस तथ्य के आधार पर यंत्रों, कार्यशालाओं को अपना पुरुषार्थ छोड़ तो नहीं देना चाहिए। उन यंत्रों के आन्तरिक गठन (इनर सर्किट) यदि ठीक न हों तो ऊर्जा अपना वांछित कार्य कर नहीं पाएगी। इसलिए यंत्रों के पुरुषार्थ की सार्थकता यही है कि उनकी आन्तरिक प्रकृति, प्रवृत्तियाँ विकृत न हों, सृष्टा के अनुसार प्रामाणिक बनी रहें।

अपने आन्तरिक तंत्र को प्रामाणिक बनाए रखने तथा दिव्य ऊर्जा प्रवाह को वाञ्छित कार्यशक्ति में रूपान्तरित करते रहने को ही गुरुवर ने **जीवन साधना** कहा है। ऊर्जा प्रवाह से जुड़े रहने को **उपासना** कहा है। जहाँ उपासना-साधना का सार्थक क्रम चलेगा, वहाँ **आराधना**-सेवा-युगसृजन के कार्य सहज क्रम से होते रहेंगे।

इसी प्रकार फैक्ट्री में एक प्रामाणिक पुर्जा बनाने के लिए कई यंत्र क्रमशः कार्य करते हैं। एक का कार्य पूरा होते ही दूसरा शुरू होता है।

उनमें सभी यंत्र प्रामाणिक होते हैं, किन्तु कोई भी एक यंत्र वाञ्छित पुर्जा-उपकरण बनाकर नहीं दे सकता। उन सभी का तालमेल, सहगमन, समन्वित तंत्र ही वाञ्छित प्रतिफल दे पाता है। प्रत्येक युग साधक अपने आप में एक यंत्र तो बन सकता है, किन्तु युग सृजन के वाञ्छित प्रतिफल के लिए उसे एक सुसम्बद्ध तंत्र का अंग बनना होगा। संगठित इकाइयों से लेकर पीठों और उपजोन, जोन कार्यालयों आदि का तानाबाना इसीलिए है।

हमारी सार्थकता सिद्ध न होने पर भी समर्थ सत्ता का कार्य तो रुकेगा नहीं, नियति तो नए पुर्जे बनाकर-लगाकर अपना कार्य कर लेगी, किन्तु असफल पुर्जा अपनी उपयोगिता खोकर कबाड़ के ढेर में डाल दिया जा सकता है। ऐसी दुर्घटना किसी भी प्रज्ञा परिजन, प्रज्ञाकेन्द्र या पीठ के साथ न घटे, यही हम सबके लिए उचित है।

समग्र क्रान्ति अभीष्ट है

युगऋषि ने युगशक्ति की अवतरण व्यवस्था बनाई तथा समग्र क्रान्ति, युगनिर्माण, उज्ज्वल भविष्य के लिए अभियान चला दिया। इस महान सृजन प्रयोजन के लिए युग साधकों को यंत्र एवं संगठित इकाइयों- प्रज्ञा केन्द्रों को तंत्र के रूप में विकसित- क्रियाशील होने के लिए व्यवस्था बना दी। शक्तिपीठों, प्रज्ञाकेन्द्रों, चरणपीठों की स्थापना के पीछे उनका उद्देश्य यही रहा है कि दिव्य लक्ष्य के लिए व्यापक और प्रभावी तंत्र बन जाए। पीठ अभियान की रजत जयंती वर्ष में हमें इस तंत्र को जीवंत- जाग्रत् बनाने के लिए प्राण-प्रण से जुट जाना चाहिए। युग सृजन ही हमारी पहचान है, वही लक्ष्य है और वही हमारा पुरुषार्थ है, अस्तु हम सबके मन-मस्तिष्क में यह घोष सतत् गूँजता रहे:-

हमारी पहचान - युग निर्माण,
हमारा संधान - युग निर्माण,
हमारा अभियान - युग निर्माण

इसके लिए समग्र क्रान्ति के अन्तर्गत तीनों क्रान्तियों को हर क्षेत्र में

जीवन्त और प्रभावी बनाना है।

विचार क्रान्ति के लिए :-वेदमूर्ति की नियमित उपासना करें, प्रज्ञा प्रखर बनाने की साधना करें, चिन्तन को परिष्कृत करें, स्व-गरिमा और स्व-कर्त्तव्य बोध को गहरा बनाएँ। नए क्षेत्रों और नए व्यक्तियों को प्रचार माध्यमों से प्रभावित और सृजन प्रयोजनों के लिए सहमत करें।

नैतिक क्रान्ति के लिए :-तपोनिष्ठ से उपासनात्मक सम्बन्ध रखें, चरित्र और अभ्यास के परिष्कार की तप साधना करें। प्रचार अभियान के माध्यम से प्रभावित होकर जुड़े व्यक्तियों को श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करने के लिए पुरोहित और प्रशिक्षक स्तर की भूमिकाएँ अपनाएँ।

सामाजिक क्रान्ति के लिए :-युगाचार्य के सान्निध्य हेतु उपासना करें। व्यवहार को पवित्र और परिष्कृत बनाने की साधना करें। योजना के प्रशिक्षक की पात्रता विकसित करें। अपने स्नेह-सद्भाव को इतना जीवन्त बनाएँ कि जो छुए वही जुड़ जाय। नैतिक क्रान्ति से उभरने वालों को उनकी रुचि और प्रवृत्ति के अनुरूप कार्यों में स्नेह और सम्मान के साथ नियोजित करने की क्षमता का विकास करते रहें।

ऋषि तंत्र इन महान कार्यों के लिए शक्ति तो देंगे ही, उन्हें करने की कुशलता तो हमें अपने अभ्यास -तप से ही प्राप्त करनी होगी।

युग निर्माण योजना कागजी या कल्पनात्मक नहीं है। वह समय की पुकार, जनमानस की गुहार और दैवी इच्छा की प्रत्यक्ष प्रक्रिया है। इसे साकार होना ही है। इस सौभाग्य के लिए हममें से प्रत्येक को प्रसन्न होना चाहिए और गर्व अनुभव करना चाहिए।

-परम पूज्य गुरुदेव

(वाङ्मय-युग निर्माण योजना दर्शन, स्वरूप ३.४७)

युग शक्ति का प्रवाह प्रखर बनायें

श्री अरविन्द जी ने कहा है कि इस युग की समस्याओं का समाधान एवं श्रेष्ठ युग की संभावनाओं का क्रियान्वयन सामान्य मानस से संभव नहीं होगा, उसके लिए अतिमानस के अवतरण की जरूरत पड़ेगी। इसी संदर्भ में उन्होंने 'सावित्री' जैसे गंभीर ग्रंथ की रचना की।

युगऋषि, परमपूज्य गुरुदेव ने कहा-''नवयुग सृजन के दैवी संकल्प को मूर्तरूप देने के लिए 'महाप्रज्ञा' के अवतरण की व्यवस्था बन गयी है। आदि शक्ति गायत्री युगशक्ति के रूप में प्रवाहित होने के लिए सन्नद्ध है। सभी भावनाशील उसका लाभ उठाने के लिए सादर आमंत्रित हैं।'' जन-जन को इस दिव्य धारा का बोध कराने के लिए उन्होंने गायत्री महाविज्ञान ग्रंथ जनसुलभ भाषा में प्रस्तुत किया।

सन् १९५८ में सम्पन्न १००८ कुण्डीय यज्ञ, ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान के समय उन्होंने उद्घोष किया कि आद्य शक्ति गायत्री वेदमाता, देवमाता की भूमिका से आगे बढ़कर विश्व माता के रूप में सक्रिय हो रही है। शीघ्र ही वह समय आएगा जब सारा विश्व गायत्री मंत्र का उपयोग करेगा।

मथुरा से विदाई (सन् १९७१) के पहले का प्रसंग है। पत्रकारों ने उनसे पूछा-आप युगनिर्माण जैसे सार्वभौम उद्देश्य को लेकर बढ़ रहे हैं। इसके लिए आप ईश्वरीय सत्ता का भी संदर्भ देते हैं। लेकिन अपने देश में ईश्वर के नाम पर तमाम मतभेद हैं तथा फ़साद भी पैदा होते रहते हैं, इस विसंगति से आप समाज को कैसे बचाएँगें?

उन दिनों बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था। वह समाचार सुर्खियों में था। आचार्य प्रवर ने कहा ***'विसंगतियाँ इसलिए हैं कि जनमानस में ईश्वर की भिन्न-भिन्न अवधारणाएँ हैं। हम बैंकों की तरह ईश्वर का भी राष्ट्रीयकरण कर देंगे।'*** *स्पष्ट है कि उनका संकेत समर्थ गायत्री विद्या की ओर था, जिसके आधार पर ईश्वर के रूप और नाम*

से ऊपर उठकर ईश्वर की सार्वभौम सत्ता का सहज बोध किया जा सकता है।

*हरिद्वार में सूक्ष्मीकरण साधना (सन् ८४ से ८६) के बाद उन्होंने कहा-**हमारी गायत्री अब समुद्र बन गई है।** अर्थात जैसे विभिन्न दिशा-धाराओं वाली नदियाँ समुद्र में एकाकार हो जाती हैं, वैसे ही साधना की विविध धाराएँ गायत्री महाविद्या के प्रभाव से समरस हो जाएँगी।*

विज्ञजन विवेक दृष्टि से देख सकते हैं कि उक्त कथनों की सार्थकता क्रमशः स्पष्ट होती जा रही है। गायत्री महामंत्र के प्रयोग पर लगे प्रतिबंध लगभग निरस्त-प्रभावहीन हो चुके हैं। गायत्री महामंत्र के कैसेट, सी.डी. आदि का प्रयोग खुलकर देश और विश्व में किया जाने लगा है। तमाम संतों, धार्मिक नेताओं ने अपने-अपने अनुयायिओं को गायत्री मंत्र का प्रयोग करने की छूट एवं प्रेरणा देनी शुरू कर दी है। इस्लाम के सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त सूरह फातिहा और गायत्री महामंत्र में एकात्मता का अनुभव किया जाने लगा है। सनातनी, आर्य समाजी, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, तमाम मत-मतान्तरों से जुड़े प्रगतिशील संत-साधक गायत्री महामंत्र को सार्वभौम मानने लगे हैं।

अगले चरण प्रखरतर बनें

पूज्य गुरुदेव ने स्पष्ट कहा है कि अब समय विश्व-एकत्व का आ गया है। विश्व धर्म, विश्व संस्कृति, विश्व व्यवस्था, विश्व भाषा की ओर प्रगति के चरण बढ़ चले हैं। इन सब श्रेष्ठ लक्ष्यों की सिद्धि में विवेक दायिनी महाप्रज्ञा गायत्री की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण रहेगी। युग निर्माण के लिए समर्पित गायत्री परिवार तथा युगशक्ति के ऊर्जा संचार के केन्द्रों के रूप में प्रतिष्ठित गायत्री शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों से जुड़े तंत्र को इस प्रयोजन की पूर्ति हेतु व्यापक और प्रभावी बनाना जरूरी है।

***समझें-समझाएँ**-गायत्री विद्या ईश्वर के किसी नाम या रूप के*

माध्यम से परमात्मा को भजने वाले श्रद्धालु गायत्री महामंत्र का उपयोग नि:संकोच कर सकते हैं।

गायत्री मंत्र का जप किसी भी देव प्रतिमा के सामने अथवा निराकार ईश्वर का बोध कराने वाले किसी भी पवित्र स्थल पर किया जा सकता है। इसके जप से युगशक्ति की समर्थ धाराओं के प्रवाह का लाभ साधक को प्राप्त होने लगता है।

गायत्री महामंत्र के विभिन्न चरण ब्रह्मविद्या के विभिन्न पक्षों और प्रमाणों का साक्षात्कार साधक को करा सकते हैं। जैसे-

ॐ :-परमात्म सत्ता के लिए नाम, रूप से परे स्वरपरक सम्बोधन, जो परमात्मा में विश्व के उद्भव, विकास और समाहरण की सामर्थ्य का बोधक है।

भूर्भुवः स्वः :-वह परमात्मा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं आकाश तीनों लोकों में संव्याप्त है। वह प्राणरूप, दु:खनाशक, सुख स्वरूप है, अर्थात वह सर्वव्यापी और गुणागार है।

तत् सवितुर्वरेण्यं :-वह सबका उत्पादक, सविता स्वरूप दिव्य ऊर्जा का स्रोत होने के कारण सभी के लिए वरणीय, आत्मसात करने योग्य है।

भर्गो देवस्य धीमहि :-हम उसे अपने अन्त:करण में धारण करें, चूँकि वह विकारों के विनाश तथा देवत्व के विकास में समर्थ है।

धियो यो नः प्रचोदयात् :- हमारे अन्त:करण में स्थापित होकर वह हम सबकी बुद्धि को सन्मार्ग पर चला दे।

महामंत्र के यह विभिन्न चरण साधकों को क्रमश: परमात्म सत्ता के सार्वभौम स्वरूप का बोध कराते हैं, उसके साथ साधक का सहज सम्पर्क जोड़ते हैं, साधक के जीवन को शोधित और विकसित बनाते हैं और उनमें एक साथ श्रेय पथ पर बढ़ने की शक्ति संचरित करते हैं।

यदि इस प्रकार समझाकर जन-जन को युगशक्ति की धारा से

जोड़ने का योजनाबद्ध क्रम चलाया जाय, तो करोड़ों की संख्या में नए युग साधक तैयार किये जा सकेते हैं। वे अपने परम्परागत क्रम में किसी भी मूर्ति, चित्र या गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हों, उसे बरकरार रखते हुए गायत्री महामंत्र का प्रयोग प्रारंभ कर सकते हैं। इसके लिए गायत्री मंत्र के मानवाकृति रहित चित्र भी तैयार कराए गये हैं। उसमें केवल सूर्य एवं उसके आभा मण्डल में गायत्री मंत्र बड़े अक्षरों में अंकित है। उन्हें गायत्री मंत्र प्रयोग हेतु संकल्प के प्रतीक रूप में नि:संकोच स्थापित किया जा सकता है।

गायत्री युगशक्ति के रूप में कार्य कर रही है, इसीलिए गायत्री मंत्र से भावनापूर्वक जुड़ते ही साधक के अन्त:करण में दिव्य हलचलें उभरने लगती है। जिस प्रकार मौसम के प्रभाव से बीज अंकुरित होने लगते हैं, वैसे ही युगशक्ति के प्रभाव से युग सृजन की उमंगे उभरने लगती है। इस संदर्भ में युगऋषि फरवरी ७९ की अखण्ड ज्योति से अपनो से अपनी बात के अन्तर्गत लिखते हैं –

दूध गरम करने पर मलाई तैर कर ऊपर आ जाती है। वृक्ष जब अपने पूर्ण यौवन पर होता है, तो फूलने-फलने लगता है। बादलों की जल सम्पदा जब परिपूर्ण हो जाती है तो वे आकाश में ऊँचे उड़ना छोड़कर नीचे उतर आते हैं और धरती पर बरसने लगते हैं। चंद्रमा जब पृथ्वी के समीप होता है तो समुद्र से ज्वार-भाटे उठते हैं और धरती पर कितनी ही अदृश्य हलचलें उठ पड़ती हैं। शरीरों का विकास परिपूर्ण होते ही प्रजनन की उमंगे उठने लगती है।

विचारणा और भावना के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई सदाशयता का एक ही चिह्न है कि वह लोक हित के पुण्य-परमार्थ प्रयोजनों के लिए सहज उन्मुख होती है। आदर्शों की प्रतिष्ठापना ही श्रद्धा की प्रौढ़ता का प्रमाण है। चिन्तन की भ्रष्टता और आचरण की दुष्टता के रूप में परिलक्षित होने वाली निकृष्टता के प्रति उच्चस्तरीय अन्त:करणों में प्रचण्ड आक्रोश उभरता है। असुरता से लड़ पड़ने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा

नहीं रहता। ईश्वर अवतरण के दो ही लक्ष्य हैं, धर्म का संस्थापन और अधर्म का निराकरण। जिसकी अन्तरात्मा में ईश्वरत्व की मात्रा जितनी बढ़ेगी, उसे उसी अनुपात से इन दोनों प्रयोजनों के लिए अपनी तत्परता नियोजित करनी पड़ेगी।

आस्थावान निष्क्रिय रह नहीं सकते। निष्ठा की परिणति प्रबल पुरुषार्थ में ही होकर रहती है। श्रद्धा का परिचय प्रत्यक्ष कारुणिकता के रूप में मिलता है। करुणाई की अन्तः संवेदनाएँ पीड़ा और पतन की आग बुझाने के लिए अपने सामर्थ्य और सम्पदा को प्रस्तुत किये बिना रह ही नहीं सकती। यही चिह्न है जिसकी कसौटी पर व्यक्ति को आन्तरिक गरिमा का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है। आध्यात्मिकता, आस्तिकता और धार्मिकता की विडम्बना करने वाले तो संकीर्ण स्वार्थपरता के दल-दल में फसे भी बैठे रह सकते हैं, पर जिनकी अन्तरात्मा में दैवी आलोक का वस्तुतः अवतरण होगा वे राजहंस की तरह विराट् के उन्मुख आकाश में विचरण करेंगे। विश्व कल्याण में ही उन्हें आत्म कल्याण की प्रतीति होगी। उन्हें आदर्शों के लिए समर्पित जीवन जीते ही देखा जा सकेगा।

गायत्री महाविद्या से जन-जन को जोड़ने के लिए पू.गुरुदेव ने अपनी काया यात्रा के अंतिम चरण में महत्वपूर्ण साहित्य लिखा है। उसे श्रद्धा पूर्वक लोगों से पढ़ाने से उनमें गायत्री साधना में प्रवृत्त होने की उमंग जगाई जा सकती है। अखण्ड ज्योति के उक्त लेख में वे लिखते हैं।

यों अब तक गायत्री साहित्य लिखा गया है और अब उसके तत्त्वज्ञान की विशिष्ट उद्देश्य परक जानकारियाँ देने के लिए युग शक्ति गायत्री सात भाषाओं में प्रकाशित हो रही है, पर यह नूतन साहित्य विशिष्ट उद्देश्य के लिखा गया है। इस तत्त्वदर्शन से अपरिचित लोगों को भी विश्व के नवनिर्माण की आधारशिला का स्वरूप समझने का अवसर मिल सके यह इस नवीन लेखन का विशिष्ट उद्देश्य है। इसका अनुवाद

भारत की प्राय: सभी भाषाओं में प्रकाशित होगा और अगले ही दिनों उसे गीता एवं बाइबिल की तरह संसार भर की ७०० भाषाओं में अनूदित, प्रकाशित, प्रसारित करने का योजनाबद्ध प्रयास किया जायेगा। जो तत्त्वदर्शन विश्व के नव निर्माण की प्रधान भूमिका सम्पन्न करने जा रहा है, उसकी पूर्ण जानकारी भी मानव समाज को करायी जानी आवश्यक है। स्पष्ट है कि गायत्री को जाति, लिंग क्षेत्र की बपौती नहीं रहने दिया जायेगा, वह विश्व संस्कृति का मेरुदण्ड ही थी और भविष्य में भी उसका वही स्वरूप प्रखर होगा।

प्रतिभा परिष्कार का क्रम

प्रतिभाएँ जब युगशक्ति से जुड़ेंगी तो युग परिवर्तन का चक्र तीव्र गति से चल पड़ेगा। उनके व्यक्तित्व में परिष्कार होगा। विचारों और भावनाओं में श्रेष्ठ तत्व उभरेंगे। श्रेष्ठ व्यक्तियों के श्रेष्ठ समूह बनेंगे। वे जीवन के, राष्ट्र के, विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में "मैं" की संकीर्णता से ऊपर उठकर "न:-हम सब" के हित के श्रेष्ठभाव के साथ सक्रिय होंगे। शिक्षा, धर्म, अर्थ, राजनीति, सामाजिक परिवेश सभी क्षेत्रों में युगशक्ति की प्रेरणा से व्यक्तिगत स्वार्थ एवं सुख की अपेक्षा सामूहिक स्वार्थ एवं सामूहिक हित को महत्त्व मिलने लगेगा। प्रतिभाएँ प्रतिगामी गतिविधियों से ऊपर उठकर प्रगतिशील-सृजनशील हो उठेंगी, तो उज्ज्वल भविष्य का अवतरण होने में देरी नहीं लगेगी। हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा, हम बदलेंगे-युग बदलेगा का दिव्य उद्घोष हर क्षेत्र में मूर्तरूप लेने लगेगा। विभिन्न प्रतिभाएँ अपनी-अपनी रुचि एवं प्रकृति के अनुरूप साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन, पर्यावरण, महिला जागरण, व्यसन-कुरीति उन्मूलन जैसे आन्दोलनों को गतिशील करने के लिए आगे आने लगेंगी।

पू.गुरुदेव कहते रहे हैं कि नवसृजन के अभियान में इस युग की तमाम प्रतिभाओं की भागीदारी होनी चाहिए। जब प्रतिभाओं के

मन-मस्तिष्क में युग चेतना का प्रवाह उतरेगा, तो वे नवसृजन के यज्ञ में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगेंगे।

ऊर्जा केन्द्र समर्थ बनें

उल्लेख किया जा चुका है कि पीठों की स्थापना युग सृजन प्रयोजन के निमित्त दिव्य ऊर्जा केन्द्रों के रूप में की गई है। ऋषितंत्र अपने समर्थ अनुदानों के साथ तत्पर है, जो केन्द्र प्रयोजन पूर्ति हेतु अनुशासित प्रयास करेंगे, उन्हें दिव्य अनुदान सहज मिलेंगे ही। इन्हें समर्थ बनाने के लिए जरूरी है कि :-

* उनसे सम्बद्ध परिजन समय की महत्ता, युगशक्ति की गरिमा तथा अपने गौरवमय कर्त्तव्य को ठीक से समझें और उसके लिए ईमानदारी से प्रयास करें।

* गायत्री विद्या के सार्वभौम स्वरूप को समझें तथा भेदभाव से ऊपर उठकर उसके विस्तार एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था बनाएँ।

* प्रत्येक पीठ पर समयदानियों की ऐसी व्यवस्था बने कि वहाँ पहुँचने वालों को युगशक्ति से जुड़ने का परिचय और युग साधना में प्रगति के लिए प्रेरणा हर चरण पर मिलती रहे। इसी के साथ पीठ के कार्यक्षेत्र में घर-घर, जन-जन तक पहुँचकर इसके विस्तार का क्रम चलाया जाता रहे।

* युगऋषि ने उसके लिए साधना विधि और महत्व समझाने वाला अद्वितीय साहित्य रच दिया है। इसी के साथ साधना को फलित करने योग्य सूक्ष्म जगत में अनुकूल प्रवाह भी तैयार कर दिया है। थोड़े पुरुषार्थ से भारी श्रेय-सौभाग्य पाने का सुयोग बन गया है।

प्रत्येक पीठ के प्राणवान, जिम्मेदार परिजनों को चाहिए कि अभी से संकल्प पूर्वक नये युग साधक बनाने तथा पुरानों को पुष्ट, प्रभावी बनाने का अभियान शुरू कर दें। गायत्री शक्तिपीठ अभियान प्रारंभ होने के रजत जयंती वर्ष में कम से कम इतना प्रयास तो किया ही

जाना चाहिए कि हर श्रद्धावान, ईश उपासना के प्रति आस्थावान नर-नारी को गायत्री साधना की प्रेरणा देने, सहमतों को प्रशिक्षित करने का क्रम बना लिया जाय।

* गायत्री परिवार से जुड़े हर श्रद्धालु को साधना, स्वाध्याय में पहले से अधिक नियमित एवं गंभीर बनाने का प्रयास किया जाय। विभिन्न संगठनों की सूची बनाई जाय। उनमें से जिनसे सम्बन्धित धर्म गुरुओं ने गायत्री साधना पर रोक नहीं लगाई है या उसकी उपयोगिता बताई है, उन सबको प्रेरित करने का क्रम बने। इसके लिए साधना परक साहित्य एवं संगोष्ठियों का आयोजन किया जा सकता है। ऐसे साधकों को अपनी उपासना के साथ गायत्री मंत्र जोड़ने का लाभ समझाया जाय। केवल मंत्र वाला चित्र रखने पर जोर दिया जाय। देव स्थापना की तरह मंत्र स्थापना अभियान चलाया जाय। जो लोग चाहें उन्हें परम्परागत देव स्थापना वाला चित्र भी दिया जा सकता है।

पू.गुरुदेव ने यह निर्देश दिया है कि विभिन्न मत-मतान्तर वालों को गायत्री मंत्र से जोड़ना है, तो उन्हें स्थूल प्रतीकों की शर्त से मुक्त रखना होगा। युगशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को उन्होंने उचित प्रतीक कहा है। उन्होंने कहा था कि यह प्रतीक सार्वभौम है। इसी में गायत्री शक्ति तथा इसी में गुरुसत्ता को समाहित देखा जा सकता है। केवल दीपक अथवा उगते सूर्य के चित्र को भी प्रतीक मानकर गायत्री मंत्र साधना की जा सकती है।

उन्होंने तो सूक्ष्मीकरण के बाद यहाँ तक भी कहा था कि ''गायत्री मंत्र संस्कृत में होने से कई लोगों को इसके जप में झिझक हो सकती है। इसलिए मैंने नई गायत्री बना दी है-उज्ज्वल भविष्य की प्रार्थना। 'हे प्रभु! हम सबको उज्ज्वल भविष्य के मार्ग पर चला दो।' यह भाव किसी भी भाषा में व्यक्त करने से 'धियो यो नः प्रचोदयात' का जैसा प्रभाव ही बन जायेगा। ''

** यह सब करने के लिए साधकों को संगठित होकर ही कार्ययोजना बनानी होगी। पीठें सृजन सैनिकों की छावनियाँ बनें। संगठन को महत्त्व दिया जाय। गायत्री मंत्र जप में भी जब तक अपने को **'मैं'** की जगह **'हम'** के रूप में विकसित करने का उत्साह नहीं उभरता, तब तक गायत्री उपासना-अध्यात्म साधना को चिन्ह पूजा ही माना जा सकता है। मिशन से प्रकाशित पुस्तिका **सबके लिए सुलभ-साधना उपासना** का उपयोग इस हेतु सहज ही किया जा सकता है।*

** सामूहिकता के साथ सहगमन जरूरी है। इसके लिए संगठन की रीति-नीति के अनुसार एक व्यवस्था क्रम (सिस्टम) हर पीठ पर विकसित हो जाना चाहिए। इसी से प्रतिभाओं को निखारने तथा उन्हें नवसृजन में नियोजित करते रहने का दीर्घकालीन दायित्व संभाला जा सकेगा।*

युग निर्माण योजना ने ज्ञानयज्ञ की जिस मशाल को जलाया है,उसे प्रज्वलित एवं प्रदीप्त ही रहना चाहिए। इस अंधकार युग में यह प्रकाश ही आशा की आजीवन की ज्योति है। व्यक्ति और समाज के उज्ज्वल भविष्य की संभावना अपने इस अभियान की सफलता पर निर्भर है। इसलिए हममें से किसी को भी इस दिशा में अन्यमनस्क नहीं होना चाहिए।

-परम पूज्य गुरुदेव

(वाङ्मय-युग निर्माण योजना दर्शन, स्वरूप,३५६-५७)

समयबद्ध लक्ष्य बनाकर चलें

युगसंधि महापुरश्चरण की महापूर्णाहुति के साथ ही २१ वीं सदी में वाञ्छित सृजन परक गतिविधियों को संचालित करने के लिए अपने देव परिवार-युग निर्माण परिवार या गायत्री परिवार को सुसंगठित करके प्रत्येक संगठित इकाई को नव सृजन की सुनिश्चित जिम्मेदारी सौंपने का क्रम चला दिया गया है। समझदार, ईमानदार परिजनों ने थोड़े ही समय में जिम्मेदारी स्वीकार करके बहादुरी के साथ आगे बढ़ने का सराहनीय उत्साह दिखाया है। उसके सुपरिणाम भी जगह-जगह उभरने लगे हैं। शक्तिपीठ अभियान के रजत जयंती के कार्यक्रमों को शानदार ढंग से लागू करने की पहल करने की उम्मीद ऐसे ही प्राणवान परिजनों की संगठित इकाई से की जा रही है। भरोसा किया जाता है कि परिजनों के निष्ठाभरे पुरुषार्थ तथा ऋषितंत्र के अनुग्रह भरे अनुदानों के सुसंयोग से ऐसे शानदार परिणाम उभरेंगे जिन पर गर्व अनुभव किया जा सके।

इसके लिए जिनसे पहल की अपेक्षा की गई है, वे हैं:-

** वे सभी पीठें, जहाँ संगठन के जोनल या उप जोनल केन्द्र प्रारंभ किए गये हैं।*

** जिला मुख्यालय या भिन्न स्थानों पर स्थित जीवन्त पीठें/प्रज्ञा केन्द्र, जिन्होंने अपने जिले के किसी सुनिश्चित क्षेत्र में नव सृजन अभियान को गति देने की जिम्मेदारी उठाई है।*

उक्त सभी जाग्रत् इकाइयों की सयुक्त समन्वय समिति के सदस्यों को यह जिम्मेदारी सौंपी जा रही है कि वे अपने क्षेत्र में स्थित गायत्री शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों, गायत्री मंदिरों, प्रज्ञा केन्द्रों को इस एक वर्ष में पहले की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक, व्यवस्थित एवं समर्थ बनाने के लिए संकल्पित हों। इस पुण्य प्रक्रिया में मुख्यालय शांतिकुंज, हरिद्वार के समर्थ अंग-उपांगों की भूमिका निभाकर गौरवान्वित हों।

इस संदर्भ में जिम्मेदारियों की दो प्रमुख धाराएँ होंगी-

१. अपने केन्द्र/पीठ को अपेक्षाकृत अधिक समर्थ एवं प्रभावी बनाना २. अपने क्षेत्र में स्थित पीठों को व्यवस्थित एवं प्रभावी बनाने के लिए योजनाबद्ध प्रयास प्रारंभ करना। इन दोनों प्रकार की धाराओं के लिए टोलियाँ बनाकर जिम्मेदारियाँ बाँटकर कार्य प्रारंभ कर देना चाहिए।

१. स्थानीय :-अपने केन्द्र/पीठ के निम्नांकित मुख्य चारों प्रभागों के लिए प्रगति लक्ष्य सुनिश्चित करें।

(क) कानूनी तंत्र तथा वित्त व्यवस्था को अधिक प्रामाणिक एवं पारदर्शी बनाने के लिए।

(ख) पीठ को जनश्रद्धा केन्द्र, आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न बनाने के लिए।

(ग) संगठन को अधिक चुस्त-दुरुस्त एवं प्रभावी बनाने के लिए, परिजनों की संख्या एवं गुणवत्ता बढ़ाने के लिए।

(घ) लोकहितकारी आन्दोलनों को गति देने के लिए, अपने तथा समानधर्मी संगठनों के लिए सुसंयोग से बढ़ाए जाने वाले अगले चरणों के संदर्भ में।

उक्त चारों प्रभागों में वर्तमान स्थिति से आगे प्रगतिशील चरण बढ़ाने की योजना बनाएँ और उसे लागू करें।

२. क्षेत्रीय :-अपने से सम्बद्ध क्षेत्र में पहले जो गायत्री पीठ/मंदिर/प्रज्ञा केन्द्र हैं, उनका सर्वेक्षण करना। (क) वे कहाँ स्थित हैं? (ख) उनकी कानूनी स्थिति क्या है? (ग) उनसे जुड़े ऐसे व्यक्ति जिन्हें जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, वे कौन-कौन हैं? (घ) उन्हें युगऋषि के निर्देश के अनुसार अपने विधिक एवं नैतिक दायित्वों का कितना बोध है? (ङ) विकास के लिए जो अगले चरण उठाये जाने जरूरी हैं, उनके लिए उनमें उत्साह एवं सामर्थ्य का स्तर क्या है? (च) वाञ्छित प्रगति के लिए पहले चरण की जरूरतें क्या हैं?

इन दोनों स्थानीय एवं क्षेत्रीय उत्तरदायित्वों के सर्वेक्षण तथा अगले

प्राथमिक चरणों के निर्धारण का कार्य यथाशीघ्र पूरा कर लेना चाहिए। इस पुण्य कार्य को अनुष्ठान मानकर उनकी पूर्ति तक किसी तपश्चर्या का नियम बनाकर चल पड़ना लाभकारी होगा।

क्रमशः प्रगति के चरण बढ़ाएँ

इस अवधि में सर्वेक्षण-निर्धारण की प्रामाणिक प्रक्रिया पूर्ण कर लेने पर दोनों (स्थानीय एवं क्षेत्रीय) पीठों-संस्थानों के लिए प्रगति के योजनाबद्ध चरण बनाकर चल पड़ें। समयबद्ध कार्ययोजना के अनुसार निर्धारित अवधि में निर्धारित प्रगति लक्ष्यों को पूरा करते हुए चला जाए।

स्थानीय समर्थ पीठों से जुड़े परिजनों (पत्रिकाओं के ग्राहकों, दीक्षितों, देवस्थापना युक्त घरों, समयदानियों, अंशदानियों) आदि की संख्या एक वर्ष में डेढ़ गुनी से दो गुनी करने का लक्ष्य रखा जाए।

उक्त केन्द्रों पर साधना सत्र तथा समयदानी प्रशिक्षण सत्र चलाने की व्यवस्था विकसित की जाए। यह सत्र भले ही प्रतिदिन सुबह-शाम एक-दो घंटे वाले अथवा ३ दिन से ७ दिन जैसी अल्प अवधि के हों, भले ही यह माह में एक बार ही चलें, किन्तु उनका गरिमामय संचालन नियमबद्ध होता रहे।

केन्द्र पर प्रचारकों, प्रवक्ताओं, प्रशिक्षकों, योजनाकार एवं नियोजकों की योग्यता तथा संख्या बढ़ाने के प्रयास चलते रहें। युग निर्माण के लिए क्षेत्र की भूख मिटाने के लिए इनकी संख्या बढ़ाने का भी सुनिश्चित लक्ष्य रहे। अगले दिनों जब विभिन्न आन्दोलन गति पकड़ेंगे, ग्राम स्वच्छता, आपदा प्रबंधन जैसे कार्यों को हाथ में लिया जाएगा, तब बड़ी संख्या में श्रमशीलों एवं विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी।

क्षेत्रीय पीठों/केन्द्रों के लिए संकल्पबद्ध चरण बढ़ें, जैसे-वहाँ मिशनरी भावना वाला कोई पूर्ण कालिक समयदानी या मानदेय देकर कम से कम एक परिव्राजक यथाशीघ्र नियुक्त किया जाय। उसकी भावना तथा योग्यता को बढ़ाने-परिष्कृत करने की व्यवस्था बनाई जाय।

क्रमशः आवश्यकता के अनुसार उनकी संख्या बढ़ाई जाय। सम्बद्ध ट्रस्टियों या जिम्मेदार व्यक्तियों को पूज्य गुरुदेव की योजना के अनुरूप उनके विधिक तथा नैतिक दायित्वों का बोध कराने तथा तदनुसार कार्य करने के लिए प्रेरणा-प्रशिक्षण देने की व्यवस्था बनायी जाय।

विधिक व्यवस्था में पीठ की भूमि एवं भवन आदि का स्वामित्व ट्रस्ट के नाम होने, ट्रस्ट की नियमित मीटिंगों, मिनिट बुक, आय-व्यय के ऑडिट आदि के संदर्भ में प्रामाणिकता लायी जाय। यदि विधिक दायित्वों को संभालने की स्थिति के स्थानीय व्यक्ति न हों, तो किसी निकटवर्ती समर्थ पीठ के ट्रस्ट के अन्तर्गत उसकी व्यवस्था स्थानान्तरित की जाय। स्थानीय व्यवस्था के लिए स्वतंत्र समिति बना देने से काम चल सकता है। ऐसे प्रसंग सामने आने पर सक्रिय जोन-उपजोन अथवा मुख्यालय का सहयोग प्राप्त करना भी जरूरी होगा।

नैतिक दायित्वों के अन्तर्गत मंदिर व्यवस्था या आश्रम व्यवस्था के साथ संपूर्ण व्यवस्था को युगऋषि की योजना की गरिमा के अनुरूप विकसित करने, धर्मतंत्र से लोकशिक्षण की गतिविधियाँ चलाने, निर्धारित आन्दोलनों में साधना आन्दोलन के साथ कोई एक-दो और आन्दोलन हाथ में लेने जैसे चरणबद्ध लक्ष्य रखे जा सकते हैं।

इन कार्यों के लिए मार्गदर्शन प्रस्तुत पुस्तक के साथ निम्नांकित चार पुस्तिकाओं से प्राप्त करते रहें-

१. सबके लिए सुलभ उपासना-साधना
२. जीवन देवता की साधना-आराधना,
३. लोकसेवियों के लिए दिशाबोध,
४. संगठन की रीति-नीति।

शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों, प्रज्ञा केन्द्रों, संगठित इकाइयों के सक्रिय-जिम्मेदार व्यक्तियों, ट्रस्टियों, समन्वय समिति के सदस्यों आदि को मिलजुलकर उक्त पुस्तकों का अध्ययन पाठ्य पुस्तकों की तरह करना चाहिए। अपने प्रयासों के क्रम में जो कठिनाइयाँ आयें उन्हें हल करने के

लिए उपजोन, जोन तथा मुख्यालय से सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

इतना तो सभी करें

ऊपर की पंक्तियों में समर्थ केन्द्रों द्वारा अपने स्वयं के तथा क्षेत्र में फैली पीठों के विकास के लिए क्रमिक विकास प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदारी उठाने की बात कही गई है। उसके चरण तो हर क्षेत्र की आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार विवेक पूर्वक निर्धारित करने होंगे। रजत जयंती वर्ष में प्रत्येक पीठ के लिए कुछ अनिवार्य क्रम भी दिये जा रहे हैं। इन्हें भी एक वर्ष में फलित कर लेना है-

* प्रत्येक पीठ पर युग निर्माण सत्संकल्प का बड़ा बोर्ड तथा लाल मशाल का व्याख्या युक्त चित्र परिसर की शोभा के अनुरूप महत्वपूर्ण स्थल पर स्थापित किया जाय। क्षेत्र में उक्त दोनों को घर-घर, जन-जन तक पहुँचाने का अभियान चलाया जाय। न्यूनतम संख्या निश्चित करके आगे बढ़ा जाय। युग निर्माण सत्संकल्प के सुंदर जेब में रखने योग्य रंगीन कार्ड बनवाए गये हैं। इनके प्रथम पृष्ठ पर सत्संकल्प का महत्त्व, बीच के दो पृष्ठों पर सत्संकल्प तथा अंतिम पृष्ठ पर मशाल का व्याख्या सहित चित्र छपा है। १० रुपये के ४० कार्ड शांतिकुंज में उपलब्ध हैं। इन्हें हर परिजन अपने पास भी रखे तथा संपर्क वालों को देकर उसका लाभ उठाने के लिए प्रेरित करे। मशाल के विभिन्न आकार वाले चित्र भी अलग से उपलब्ध हैं।

* प्रत्येक पीठ/ केन्द्र द्वारा चारों दिशाओं में कम से कम १० कि.मी. तक दीवालों पर सद्वाक्य लेखन का व्यापक अभियान चलाया जाय। इसके अन्तर्गत अपने लक्ष्य-मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण, इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, तीन निर्माण, तीन क्रांतियाँ, चार मंत्रों आदि को विशेष रूप से लिखा जाय। अन्य प्रेरक वाक्य क्षेत्र की रुचि के अनुसार चुने जा सकते हैं।

* प्रत्येक पीठ के क्षेत्र में कम से कम १००० नए गायत्री साधक बनाने, उनकी श्रद्धा, समयदान, अंशदान को पीठ से जोड़ने का लक्ष्य रखा

जाय। नए-पुराने साधकों को मण्डलों के रूप में संगठित किया जाय। ध्यान रहे शक्तिपीठों का मूल्यांकन उनके भवन से नहीं, उनके साथ जुड़े कर्मठ परिजनों के मण्डलों, नव चेतना विस्तार केन्द्रों (सक्रिय संगठित समूहों) के माध्यम से ही किया जाना है।

** क्षेत्र में उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ साकार करने के लिए विभिन्न स्थलों पर घंटे-दो घंटे की अवधि में २४ हजार या सवा लक्ष गायत्री जप के सामूहिक अनुष्ठान संकल्प पूर्वक कराए जाएँ। ऐसे आयोजनों की न्यूनतम संख्या निश्चित कर ली जाय।*

** ऋषि चेतना के सूक्ष्म प्रभाव से तमाम धार्मिक-सामाजिक संगठनों के सूत्र संचालकों ने अपने अनुयायियों को गायत्री महामंत्र जप करने के लिए भी प्रेरित किया है। उन सभी से संपर्क करके उन्हें गायत्री मंत्र का नियमित जप करने का सरल विधि-विधान समझाने के लिए कुछ समझदारों को नियुक्त किया जाय।*

** क्षेत्र की पीठों के आसपास अथवा एक पीठ से दूसरी पीठ तक साइकिल प्रचार यात्राएँ निकाली जाएँ। संस्कृति मण्डलों, युवा मण्डलों के सदस्यों का उपयोग इस हेतु विशेष रूप से किया जा सकता है।*

** सभी जगह शक्तिपीठों के परिचय एवं वहाँ उपलब्ध सुविधाओं, किए जाने वाले कार्यकलापों के छोटे-छोटे पत्रक/ फोल्डर छाप कर रखे जायें। क्षेत्र में उन्हें वितरित कर पीठ को और जन-सामान्य को आकर्षित किया जाय। पीठ तक पहुँचने में सहायता के लिए जग़ह-जगह मार्गदर्शक पट्टिकाएँ लगाई जाएँ।*

** परिजन/ कार्यकर्त्ता/ संचालकगण अपनी शक्तिपीठ/ प्रज्ञापीठ को हर दृष्टि से समर्थ, सशक्त बनाने हेतु अपने निकटवर्ती क्षेत्र में देव परिवार बनाने का अभियान चलायें।*

** सभी पीठों पर क्षेत्र के प्रज्ञा परिजनों, ग्राहकों, साधकों के नाम-पते, जन्मदिन, विवाह दिन नोट करके रखे जाएँ। उनके जन्मदिन, विवाह दिन पर उन्हें पोस्टकार्ड लिखकर या फोन करके पीठ पर पहुँचने का*

आमंत्रण दिया जाय। वे पहुँचें या न पहुँचें, पीठ के नियमित यज्ञ में उनके लिए मंगल कामना सहित आहुतियाँ अवश्य डाली जायें।

यह छोटे-छोटे नियम ऋषिसत्ता के अमोघ-अचूक सूत्र हैं। इनके उपयोग से पीठों की प्रतिष्ठा एवं दक्षता में थोड़े ही समय में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकेगी।

यह सब कार्य करने के लिए लोकसेवी प्रवृत्ति के नैष्ठिक व्यक्तियों का समयदान जरूरी है। समयबद्ध कार्ययोजना को कार्यान्वित वे ही कर सकते हैं। वे ही विभिन्न शक्तियों, विभूतियों को भटकाव से रोककर उन्हें सृजन हेतु नियोजित कर सकते हैं।

युगऋषि पूज्य गुरुदेव ने उक्त विषय को अपने कथन और जीवन में बहुत स्पष्ट किया है। उन्होंने स्पष्ट देखा और समझाया कि इन दिनों समय के प्रभाव से श्रम शक्ति, अर्थ शक्ति, शौर्य शक्ति का विकास काफी हो गया है। गुण, कर्म विभाग के अनुसार यह विशेषताएँ क्रमशः शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय वर्ग द्वारा विकसित करते रहने का नियम रहा है। इन सभी शक्तियों को व्यक्ति, परिवार एवं समाज के हित में प्रयुक्त करने के लिए, हीन प्रयोजनों में लगने से रोकने के लिए आत्मशक्ति के जागरण और विवेकपूर्ण प्रयोग की जरूरत पड़ती है। यह विशेषता जाग्रत्-जीवन्त रखने वालों को 'ब्राह्मण' कहा जाता रहा है। आज समाज-विकास में सबसे बड़ी बाधा इसी ब्राह्मण वृत्ति की कमी है। यह विशेषता जन्म-जाति से नहीं, गुण-कर्म के परिष्कार की साधना से विकसित करने की परम्परा रही है। इसीलिए योगीराज श्री कृष्ण द्वारा गीता में कहा गया-"**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुणकर्मविभागशः**" अर्थात् यह चारों वर्ण मेरे (परमात्मचेतना) द्वारा गुण-कर्म विभाग के आधार पर विकसित किए गये हैं।

जरूरत है ब्राह्मणत्व के विकास की

समय की माँग है कि समाज में जाग्रत् विभिन्न शक्तिधाराओं को लोकहितकारी दिशा में, प्रयोजनों में लगाने के लिए जरूरी जिस ब्राह्मणत्व की कमी पड़ गई है, उसकी आपूर्ति जल्दी से जल्दी कुशलता एवं तत्परता पूर्वक की जाय। स्वामी विवेकानन्द जी ने यही अपील की और पू. गुरुदेव का जीवन्त पुरुषार्थ सतत इसी दिशा में पूरी निष्ठा से लगा रहा है।

बात सन् १९५४-५५ के आसपास की है। पू. गुरुदेव किसी क्षेत्रीय आयोजन में जा रहे थे। झाँसी में ट्रेन बदलने के क्रम में कुछ घंटे का समय मिला। वहाँ सहज चर्चा के क्रम में पू. गुरुदेव ने जो कहा है-

"हमारा संगठन ब्राह्मण संगठन है। समाज को सही दिशा देते रहने का कार्य ब्राह्मण का रहा है। वह ब्राह्मण (ब्राह्मणत्व) मर गया, इसी से समाज दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। हमारा प्रयास उसे पुनः जाग्रत्, प्रतिष्ठित, सक्रिय करना ही है। यदि बच्चे समर्थ होने के पहले ही कोई दुकानदार मर जाय, तो दुकान का बिखर जाना स्वाभाविक है। बच्चे कुछ समझदार होते ही जैसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार छोटे-छोटे उद्योग करने लगते हैं, उसी प्रकार हमने ब्राह्मणत्व को पुनर्जाग्रत् करने के प्रयास प्रारंभ किए हैं। जिस प्रकार आशा की जाती है कि अनुभव और सामर्थ्य बढ़ने के साथ बच्चों का व्यवसाय विकसित होता जायगा, वैसी ही उम्मीद हम भी बनाए हुए हैं। धीरे-धीरे ब्राह्मणत्व को इतना विकसित कर लेंगे कि वह समाज को सही दिशा, प्रेरणा देता रह सके।"

उनके इस प्रयास को जो सफलताएँ अब तक मिली हैं, उन्हें इस युग में असाधारण-अनुपम भी कहा जा सकता है। जीवन में ब्राह्मणत्व का विकास करने वाली गायत्री विद्या और यज्ञ विज्ञान आज बिना भेदभाव के जन सुलभ हो चुके हैं। समाज के हर वर्ग में धर्मतंत्र से

लोकशिक्षण का कार्य करने वाले जन पुरोहित बनाने का क्रम चल पड़ा है। लगभग लुप्त या सुप्त अवस्था में चली गई संस्कार परम्परा अंगड़ाई लेकर जाग उठी है। जिन देवियों को धर्म-संस्कृति के विभिन्न अधिकारों से वंचित कर दिया गया था वे अब बिना झिझक संस्कार परम्परा को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी निभा रही हैं। समाज के हर वर्ग में ईश्वर-युगऋषि के साथ साझेदारी के लिए समय और साधनों का एक अंश लगाने वाले युग साधकों की संख्या और क्षमता क्रमशः विकसित होती जा रही है।

यह सब उपलब्धियाँ अनूठी, सराहनीय कहे जाने योग्य होने पर भी पर्याप्त नहीं हैं। अभी तो रुके हुए द्वार-मार्ग खुले भर हैं, अभी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तो बहुत कुछ किया जाना है। अभी तो ब्राह्मणत्व के जीवन्त सूत्रों का परिचय भर समाज को मिला है, अभी उन्हें इतना प्रखर और सक्षम बनाना है कि समाज में प्रतिभाओं का सुनियोजन युगसृजन के लिए स्वाभाविक ढंग से होने लगे। युगऋषि से जिनका भावनात्मक लगाव है, उन पर इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की, सृजन की चुनौतियों को स्वीकार करने योग्य ब्राह्मणत्व को विकसित करने की जिम्मेदारी आती है। उन्हें पीछे नहीं हटना चाहिए।

दिव्य अवतरण के माध्यम बनें

युगऋषि ने अपने अवतरण का लक्ष्य युग निर्माण की दैवी योजना को मूर्त रूप देना बताया है। 'अपनी विरासत और वसीयत' में उन्होंने यह तथ्य उजागर किया है कि इस महान योजना को साकार करने के लिए ऋषि तंत्र संकल्पित और सक्रिय है। हिमालय यात्रा के दौरान पू. गुरुदेव ने ऋषियों को यह आश्वासन दिया कि सूक्ष्म प्रवाह को प्रत्यक्ष जीवन में अवतरित करने के लिए वे सुयोग्य समर्पित व्यक्तित्व उपलब्ध कराएँगे। ईश्वरीय प्रवाह और ऋषियों के तप-प्रयोगों के संयुक्त प्रभाव से वह व्यवस्था सूक्ष्म जगत में बन चुकी है,अब उसे जन जीवन में अवतरित भर किया जाना है। उच्च स्तरीय प्राण-सम्पन्न व्यक्ति ही

उसके लिए उपयुक्त माध्यम बन सकते हैं। ऐसे व्यक्तित्व तैयार करने के लिए ही उन्होंने अपने प्राण और तप के अनुदान मुक्तहस्त से वितरित किए। जिनके लिए उन्होंने यह सब किया, उनसे भी उनकी कुछ अपेक्षाएँ हैं। वे लिखते हैं कि :-

"युग परिवर्तन में जिस सतयुग के अवतरण का लक्ष्य है, उसे आप सर्वप्रथम आत्मसत्ता में अवतरित करें। एक जलता दीपक असंख्यों को जला देता है, इस कथन पर विश्वास करें। स्वयं बदलें, प्रवाह को पलटें और पराक्रमी युग प्रवर्तकों की अग्रिम पंक्ति में खड़े हों। यही है समय की माँग और आत्मा की पुकार, जिसे कोई भी प्राणवान अनसुनी न करे।" (प्रज्ञा अभियान का स्वरूप और कार्यक्रम-पृ.२३)

युगऋषि की कार्ययोजना बहुत स्पष्ट है। उन्होंने युगनिर्माण परिवार में प्राणवानों को संगठित और विकसित किया है। यदि ये परिजन प्राणवान न होते तो हजारों वर्षों से प्रतिबंधित गायत्री एवं यज्ञ को जन सुलभ बनाने का मोर्चा कैसे जीतते! किन्तु अब अगला कार्य उससे बड़ा है। जन-जन को इसके लिए तैयार करना है कि वे स्वयं को नवयुग अवतरण के एक अग्रगामी माध्यम के रूप में सिद्ध करें। परिवर्तन का क्रम सराहनीय उद्‌बोधनों से नहीं, अनुकरणीय आदर्श सामने रखने से गतिशील होगा। इसके लिए उन्होंने उक्त आह्वान किया है। स्पष्ट है कि यह पात्रता ब्राह्मणोचित जीवन, सादा जीवन, उत्कृष्ट आदर्शों के अनुशासन से ही विकसित होगी।

उन्होंने अपने प्रत्येक परिजन से कहा है कि वे अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ का एक अंश नियमित रूप से नवसृजन के लिए लगाते रहें। यह शुरुवात न्यूनतम से की जा सकती है, किन्तु उस अंशदान को क्रमशः बढ़ना चाहिए। वह बढ़ेगा तभी, जब सृजनशिल्पी अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताएँ कम से कम रखेंगे। यदि आवश्यकताएँ बड़ी होंगी, तो लोक मंगल के लिए अनुदान नाम मात्र के ही रह जाएँगें। वे लिखते हैं-.....

"युग निर्माण परिवार के प्रत्येक परिजन को आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और देखना चाहिए कि भारत के औसत नागरिक के स्तर से वह अपने ऊपर अधिक खर्च नहीं करता? यदि खर्च करता है तो आत्मा की, न्याय की, कर्त्तव्य की पुकार सुननी चाहिए और उस अतिरिक्त खर्च को तुरन्त घटाना चाहिए।" (वाङ्मय क्रमांक ६६,पृष्ठ १.३२)

पूज्यवर स्पष्ट कहते हैं कि यह काफी नहीं कि हम परिजन के नाते न्यूनतम शर्त पूरी कर रहे हैं। हममें अग्रदूतों की तरह अधिक से अधिक करने की उमंग होनी चाहिए। अस्तु आत्म समीक्षा करें। तीन पुकार सुनें-(क) आत्मा की, (ख) न्याय की और (ग) कर्त्तव्य की।

(क) हम आत्मीय स्तर पर ऋषितंत्र से जुड़े हैं। आत्मा यह कैसे सहन करेगी कि हम इस आपातकाल में अपना भरपूर प्रयास न करें। ऐसे तो हमारा आत्मबल कमजोर ही बना रहें।

(ख) ईश्वर न्यायकारी है, न्याय कहता है कि जो औसत से अधिक खर्च अपने ऊपर कर रहा है, वह किसी दूसरे का हक हड़पने का अन्याय कर रहा है। हम न्याय न समझेंगे, तो न्याय करेंगे कैसे?

(ग) हम सृजन सैनिक हैं। हमने युगऋषि को ब्रह्मवर्चस जागरण का वचन दिया है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने लिए कम से कम का प्रयोग करके अधिक से अधिक युगसृजन हेतु, आपातधर्म, युगधर्म, युगदायित्व निभाने के लिए करें।

उनका अनुशासन मानें, उन्हें दुःखी न करें

उन्होंने यह बार-बार स्पष्ट किया है कि हम इस समय पर आये हैं तो यों ही नहीं। हमारी कुछ विशेष जिम्मेदारी है, जिसका पालन हमें करना ही चाहिए। जो अपने महान् दायित्वों को भूलते हैं; सुख-सुविधा पाने, अहंकार दिखाने में समय गँवाते हैं, वे बच्चों जैसी अनगढ़ हरकतें करते हैं,पू० गुरुदेव कहते हैं-

"अपना काफिला वरिष्ठों, विशिष्टों और विशेषज्ञों का है। उन्हें

बचकानी हरकत करते देखा जाएगा तो स्वभावत: गहरी चिंता होगी। .....चिन्ता का कारण उनकी निजी अवमानना तक सीमित नहीं है, परन्तु उसके साथ जुड़े उन उत्तरदायित्वों का भी प्रश्न हैं, जो इस आपत्तिकाल में जीवन-मरण बन कर मानवीय अस्तित्व एवं भविष्य की गर्दन पर नंगी तलवार बनकर लटके हुए है। *वरिष्ठ गिरेंगे तो बचेंगे क्या?" (महाकाल और उसकी युग प्रत्यावर्तन प्रक्रिया)*

इस महत्वपूर्ण समय में और कोई प्रमाद बरते तो बरते, वे जाग्रत् आत्मायें, जो युगऋषि के साथ आत्मीय स्तर पर जुड़ी हैं, उन्हें यह बाल-कौतुक शोभा नहीं देते। उन्हें भटकते-अटकते देखकर युगऋषि को चिंता होती है। वे देख रहें हैं-

** कुछ लोग जप, पूजा, कर्मकाण्ड आदि का कर्म तो करने लगे हैं, किन्तु जीवन में ब्राह्मणोचित सादगी, विनम्रता, आदर्शनिष्ठा पर उनका ध्यान ही नहीं है। * कुछ अच्छे वक्ता बन गए, उपासनात्मक कर्मकाण्ड भी कर लेते हैं, परन्तु जीवन साधना, निरहंकारिता, सलाह लो-सम्मान दो की प्रवृत्ति से दूर हैं। * कुछ सम्पन्नता के अहंकार वंश अपनी जरूरतों को औसत भारतीय स्तर पर नहीं लाते हैं, तो कुछ श्रम करते, सादगी से रहते हुए जैसे ही धन-सम्मान पाते हैं, वैसे ही डगमगाने लगते हैं। पू.गुरुदेव इन सबको बाल-खिलवाड़ मानते हैं। वे अपनी गरिमा भुला देना ही इस भटकाव का कारण मानते हैं। इससे उन्हें चिंता भी होती है, दु:ख भी होता है, वे लिखते हैं-*

परिजनो ! आप हमारी वंश परम्परा को जानिए। अगर हमको यह मालूम पड़ा कि आप ने हमारी परम्परा नहीं निभाई, अपना व्यक्तिगत ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया, अपना व्यक्तिगत अहंकार, व्यक्तिगत यश कामना और व्यक्तिगत धन (सुविधा) संग्रह का सिलसिला शुरू कर दिया, व्यक्तिगत रूप में बड़ा आदमी बनना शुरू कर दिया, तो हमारी आँखों से आँसू टपकेंगे और वे आँसू आपको चैन से नहीं रहने देगें, आपको हैरान कर देगें । (संदेश-२५ मार्च ८७)

हम उन्हें दुःखी करेंगे तो बड़ा घाटा होगा। कई जन्मों के पुरुषार्थ पर पानी फिर सकता है। हम ऐसा न होने दें। गहन आत्म समीक्षा करें, जहाँ भूल दिखे उसका प्रायश्चित्त करते हुए, आगे नये उत्साह के साथ युगधर्म में प्रयुक्त हों। बहाना न करें। इसके प्रेरणा प्रवाह को जीवन में धारण करें, ईमानदारी से ब्राह्मणत्व विकसित करने का प्रयास करें। गुरुकृपा से उच्च स्तरीय सौभाग्य-सिद्धियों के अनुदान सहज ही प्राप्त हो सकेगें।

युगानुरूप ब्राह्मण परंपरा

पू. गुरुदेव ने युगानुरूप ब्राह्मण परंपरा को पुनर्जीवित, स्थापित करने की बात कही है। तीर्थ सेवन से आत्म परिष्कार पुस्तक के पृष्ठ-९५-९६ पर उन्होंने लिखा है-

ब्राह्मण परम्परा का परिपोषण अनादि काल से उच्चस्तरीय परमार्थ माना गया है और अनन्तकाल तक माना जाता रहेगा, उपयोगिता की दृष्टि से इससे बढ़कर और कोई अधिक श्रेयस्कर पुण्य प्रक्रिया कदाचित् ही और कोई हो। इसमें एक ही कमी है कि दानी का चिरकाल तक ढिंढोरा पीटने वाला स्मारक नहीं बनता। जिनका मन इस बाल क्रीड़ा में ललचाता न हो उनके लिए ब्राह्मणत्व के परिपोषण से बढ़कर और कोई दानपुण्य हो ही नहीं सकता। सुयोग्य ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर पाते हैं। धर्म धारणा के विस्तार में तो निश्चय ही ब्राह्मण स्तर की प्रतिभाएँ ही सफल हो सकती है।

ब्राह्मणत्व घट तो गया है पर मिटा अभी भी नहीं है। कुपात्रों ने दान-दक्षिणा के प्रति अश्रद्धा का वातावरण अवश्य बनाया है, किन्तु उस शाश्वत सत्य और सनातन तथ्य में अभी भी कोई विसंगति उत्पन्न नहीं हुई है। लोकसेवियों का, विशेषतया धर्म क्षेत्र के मालियों और प्रहरियों की निर्वाह व्यवस्था बनाने वाली अन्तःश्रद्धा को, दान दक्षिणा को जीवन्त ही रहना चाहिए। उसे मृतक-मूर्छित होने से पूर्व ही सम्भाल लिया जाना चाहिए।

नवयुग के अनुरूप नई ब्राह्मण परम्परा को इन्हीं दिनों जन्म दिया गया है। यह तथ्य आँखों के सामने है। सृजनशिल्पियों की एक विशालकाय धर्मवाहिनी युगान्तरीय चेतना से लोकमानस में आलोक भरने के लिए व्रतशील कर्मनिष्ठों की तरह अग्रिम मोर्चे पर खड़ी है। उन्मूलन की दृष्टि से नैतिक क्रांति, बौद्धिक क्रांति और सामाजिक क्रांति का लाल मशाल लिये वह परिशोधन प्रक्रिया में संलग्न है। अनैतिकताओं, अन्धविश्वासों और कुरीतियों के जाल-जजांल को काटने के लिए उसका परशुराम जैसा कुल्हाड़ा अनवरत गति से चलते हुए देखा जा सकता है। 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' का उद्घोष अन्तरिक्ष को गुँजाते हुए विश्वव्यापी बनता चला जा रहा है।

इस युगवाहिनी का दूसरा रोल है- सत्प्रवृत्ति संवर्धन। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण की दृष्टि से प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक सत्प्रवृत्तियों का अभिनव प्रवाह बहा है, उसे भागीरथ द्वारा गंगावतरण की पुनरावृत्ति माना गया है। कभी मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का उद्घोष दिवा-स्वप्न कहा जाता था। पर अब जिस प्रकार वह सृजन चेतना मत्स्यावतार की तरह व्यापक हुई है, आँधी-तूफान की तरह गगनचुम्बी हुई है, उसे देखते हुए उस उद्घोष को महाकाल का संकल्प और सुनिश्चित भविष्य के रूप में देखा-समझा जा रहा है। यह प्रगति कैसे सम्भव हुई? इसका उत्तर एक ही हो सकता है कि निष्ठावान युगशिल्पी उस प्रयोजन में प्राण-पण से जुटे हैं और असम्भव को सम्भव करके दिखा रहे हैं। इन्हें सच्चे अर्थों में ब्रह्मण परम्परा का उत्तराधिकारी समझा जा सकता है।

प्रश्न और सामधान अभी भी उसी केन्द्र पर आ खड़ा हुआ है जिस पर कि प्राचीन काल में था। हल पूर्वकालिक निर्धारण और अनुकरण से ही सम्भव होगा। ब्राह्मण की निर्वाह व्यवस्था को प्राचीन काल में सर्वोच्च स्तर की पुण्य-परम्परा मानी गयी थी। अब फिर उसी को पुनर्जीवित किया जाना है। दूध का जला छाछ को भी फूंक कर

पिये-इसका औचित्य है, पर जब छाछ का ठण्डा होना अनुभवगम्य हो जाय, तो फिर उसे फूंक कर पीने की आवश्यकता नहीं समझी जानी चाहिए। युग शिल्पियों का ब्राह्मणत्व यदि असंदिग्ध सिद्ध होता है, तो दान-पुण्य की निर्झरणी का सदुपयोग इस उद्यान को सींचने में होना चाहिए।

तीर्थों में दान-पुण्य की परम्परा आरम्भ काल से ही प्रचलित है। यों यह प्रक्रिया सदा से ही धर्म-धारण का अविच्छिन्न अंग मानी और श्रद्धापूर्वक क्रियान्वित की जाती रही है। पर उसका तीर्थ स्थान में अधिक भावनापूर्वक चरितार्थ करने और सामान्य स्थानों की तुलना में अनेक गुना पुण्य फल माने जाने का जो शास्त्र वचन है, वह अकारण नहीं, उसके पीछे कुछ तथ्य भी हैं। तीर्थ के ऋषि आश्रम प्रकारान्तर से धर्म-धारणा की ऊर्जा उभारने वाले बिजली घर जैसे थे। ये सुविस्तृत क्षेत्र में शक्ति धारा भेजते और जन-जन के अभावों की पूर्ति करते थे। उन्हें ऐसे विशालकाय जलबाँधों की भी उपमा दी जाती है, जहाँ से अनेक नहरें निकलती और व्यापक क्षेत्र को सींचती हैं।

शक्तिपीठों पर पूज्य गुरुदेव की आकांक्षा के अनुरुप ब्राह्मण वृत्ति से ओत-प्रोत लोकसेवियों को स्थापित करें यह हम सबका पवित्र कर्तव्य है।

युगनिर्माण परिवार के हर व्यक्ति को अपने बारे में यह मान्यता बनानी चाहिए कि हमको भगवान ने विशेष काम के लिए भेजा है। समय को बदलने का उत्तरदायित्व, युग की आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व हमारे कंधों पर है।

-परम पू० गुरुदेव

(गुरुवर की धरोहर-२, पेज-१११)

शक्तिपीठ-प्राचीन एवं नवीन

देवी सती शिवशक्ति रूपा हैं। शक्ति का स्वरूप भर बदलता है, वह नष्ट नहीं होती। सती का भी रूपान्तरण हुआ। रूप बदल जाय, तत्व तो वही रहता है। सती के अंगों-शक्ति के अंशों की स्थापना शक्तिपीठों के रूप में की गई। पू. गुरुदेव (पृष्ठ ४०) पर लिखते हैं।

"मृत सती की लाश को कंधों पर रखकर रुद्र उन्मत्तों की तरह विचरण करने लगे। उनका ऐसा विकराल रौद्र रूप देखकर दसों दिशाएँ काँप उठीं। सती-सत्प्रवृत्ति के न रहने की स्थिति शिव के लिए असह्य थी। आपे से बाहर होकर वे हुँकार भरने लगे। उनके श्वास-प्रश्वास से अग्नि की भयानक लपटें निकलने लगीं। उन्वासों पवन आँधी-तूफान बनकर स्थिति को प्रलय में बदलने का आयोजन करने लगे।

देवता काँपे, स्थिति विषम हो गई। विचार हुआ, सृष्टि के पालक और पोषक विष्णु आगे आए। उन्होंने चक्र सुदर्शन से सती के मृत शरीर को ग्यारह हिस्सों में काट दिया। वे टुकड़े दूर-दूर गिरे। सती मर तो सकती नहीं, वे अमर हैं। यह ग्यारह टुकड़े जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ एक-एक शक्तिपीठ की स्थापना हुई। संसार में ग्यारह शक्ति पीठ प्रसिद्ध हैं। हर जगह सती (शक्ति) का नया रूप उभरा। शिव अपनी सहधर्मिणी को ग्यारह गुनी विकसित पाकर सन्तुष्ट हो गए और ग्यारह रूद्रों के रूप में पुनः आनन्द पूर्वक अपने नियत, नियमित कार्य में लग गए। १ और १ अंक समीप आकर ११ बन जाते हैं। शिव और सती का, परमात्मा और सत्प्रवृत्ति का सुयोग जब कभी भी, जहाँ कहीं भी होगा, वहीं एक और एक मिलकर ग्यारह होने की उक्ति चरितार्थ होती है।

पुरातन के अभिनव प्रयोग के संदर्भ में वे (पृष्ठ ४८ पर)

लिखते हैं-''महाकाल का विक्षोभ (तब) एक ही तरह शान्त हुआ था, (अब भी) एक ही तरह शान्त हो सकता है, उनकी प्राणप्रिय सती (सत्प्रवृति) को पुनर्जीवित किया जाय। सती के अंगों से एकादश सतियाँ प्रादुर्भूत हुई थीं, ग्यारह शक्तिपीठ बने थे। हम मानवता के उन्नायक अगणित शक्ति केन्द्र ऐसे स्थापित करें, जो भगवान शिव के संसार को सुरम्य, सुविकसित और सुसंस्कृत बनाए रखने में समर्थ हो सकें।''

पू. गुरुदेव ने यह पंक्तियाँ सन् १९६७-६८ में लिखी थीं। समय आने पर उन्होंने इसी आधार पर युगशक्ति गायत्री के विकास, विस्तार हेतु गायत्री शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों, प्रज्ञासंस्थानों की योजना बनाई और क्रियान्वित की।

भूल न करें, विसंगति से बचें

पूज्य गुरुदेव ने लिखा है-''आज भी दक्षों ने यही कर रखा है। वे तथाकथित चतुर लोग समाज के मूर्धन्य बने बैठे हैं। व्यक्ति चतुरता, तिकड़म को ही अपना आधार बनाए हुए हैं। दूसरों के सहारे वे छल-बल से आगे बढ़े, ऊँचे उठे हैं। तप और त्याग का नाम ही नहीं। ऐसे मूर्धन्य लोगों का बाहुल्य व्यक्ति और समाज की आत्मा को कुचल-मसल रहा है। यह स्थिति महाकाल को असह्य है। यह सती ही उनकी सहचरी है। जो इसे आघात पहुँचाता है, वही मानवता का शत्रु है।....आज का मानवीय चातुर्य, जो सुविधा-साधनों की अभिवृद्धि के अहंकार में अपनी वास्तविक राह छोड़ बैठा है, वह उसी दुर्गति का अधिकारी बनेगा जैसे कि दक्ष का सारा परिवार बना था।'' (महाकाल और उसकी युग प्रत्यावर्तन प्रक्रिया, पृष्ठ-४६)

दक्ष देवत्व के मुखौटे में पशुता को चला रहा था। इसलिए शिव ने उसका सिर काटकर उसके स्थान पर 'मैं-मैं करने वाले बकरे का

सिर लगा दिया, ताकि समाज उसके असली स्वरूप को पहचान ले, ठगा न जाय। वर्तमान समय में यह भूल न दुहराई जाय, यही अच्छा है। औरों से वह भूल हो जाय तो हो जाय, महाकाल से जुड़े लोगों से नहीं होनी चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भवानी-शंकर की वन्दना करते हुए उन्हें श्रद्धा-विश्वास रूप कहा है। यदि युगावतार के प्रति श्रद्धा उभरी है, तो उसे इस रूप में सक्रिय करना होगा कि जन विश्वास लेने-देने में कठिनाई न हो। श्रद्धा के नाम पर जनविश्वास-ऋषिसत्ता के विश्वास की उपेक्षा पुरुषार्थ को फलित नहीं होने देगी। श्रद्धा एवं विश्वास को पूरक बनाकर ही आगे बढ़ने में सफलता मिल सकेगी। युग साधक इस पौराणिक उपाख्यान से वर्तमान की दिशा-धारा समझें, यही उनके लिए सौभाग्य प्रद होगा।

कसौटी पर खरे उतरें

नवसृजन के लिए महाकाल शिव संकल्पित हैं, शक्ति संकल्प पूर्ति के लिए सन्नद्ध है। जरूरत है उन्हें शरीरधारी प्रामाणिक लीला सहचरों, माध्यमों की। कार्य जितना गरिमामय है, उसके लिए सहचरों की पात्रता भी उतनी ही प्रामाणिक होनी चाहिए। पू. गुरुदेव ने (पृष्ठ २१-२२ पर) लिखा है :-

"पृथ्वी को उबारने के लिए वे (महाकाल) अपने त्रिशूल पर फिर से धार धर रहे हैं। त्रिपुरारी महाकाल ने अतीत में भी विविध माया- मरीचिका को अपने १.शिक्षण २.संहार एवं ३.निर्माण के त्रिशूल से तोड़ -फोड़कर विदीर्ण किया था, अब वे फिर उसी की पुनरावृत्ति करने वाले हैं। धर्म जीतने वाला है,अधर्म हारने वाला है। लोभ, व्यामोह और अहंकार के कालपाशों से मानवता को पुन: मुक्ति मिलने वाली है। संहार की आग में तपा हुआ मनुष्य अगले दिनों पश्चाताप, संयम और नम्रता का पाठ पढ़कर सज्जनोचित सत्प्रवृत्तियाँ

अपनाने वाला है। वह दिन शीघ्र ही लाने वाले त्रिपुरारी महाकाल आपकी जय हो! विजय हो।''

जिज्ञासा उठती है, कि महाकाल के इस विजय अभियान में सहभागी साझेदार कौन बनेंगे? संहार की आग से बचने और उसके ताप से तपकर निखरने वाले भाग्यशाली कौन होंगे? इसका उत्तर युगऋषि के उक्त समीक्षात्मक वर्णन में है। उनके त्रिशूल के तीन फल हैं-शिक्षण, संहार एवं निर्माण। वे उसकी धार तेज कर रहे हैं। बीच में संहार है, उसे तो महाकाल स्वयं ही संभालेंगे, आसपास के शिक्षण और निर्माण का प्रत्यक्ष दायित्व लीला सहचरों को सौपेंगे। जो अपने व्यक्तित्व में शिक्षण एवं निर्माण की प्रवृत्तियों-क्षमताओं को धारदार बनाने की साधना में प्रवृत्त होंगे, वे ही युगदेवता के निकटवर्ती सहचर बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु इसके लिए उन्हें परीक्षा की कसौटी पर खरा सिद्ध होना पड़ेगा। ऐसा क्यों? इस संदर्भ में पूज्यवर (पृष्ठ १३४, १३५ पर) लिखते हैं -

''बड़े कार्य सामान्य शक्ति से नहीं हो सकते। कार्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान पर प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरण पहले परीक्षित कर लिए जाते हैं। महत्त्वपूर्ण पदों की नियुक्ति के पूर्व कड़ी परीक्षाएँ होती हैं। आत्मिक स्तर पर किए जाने वाले बड़े कार्यों को सबल आत्माएँ ही कर सकती हैं। उनके लिए यदि कठोर परीक्षाएँ न रखी जाएँ, तो कुपात्रों के हाथों में जाकर योजना ही चौपट हो जाये। नव निर्माण के कठिन कार्यों को पूरा करने के लिए जिन महान आत्माओं को उभर कर ऊपर आना है, उन्हें कठिनतम परिस्थितियों में अपनी प्रामाणिकता का परिचय देते हुए आगे बढ़ना होगा।''

परीक्षा के संदर्भ में वे लिखते हैं-''परीक्षा उसकी (छात्रों द्वारा किए गए दावों की) वास्तविकता, अवास्तविकता का निर्णय कर देती है। इसी प्रकार आदर्शवादी के जीवन में वे परीक्षाकाल आते हैं,

जिनकी कसौटी पर यह सिद्ध हो जाता है कि सिद्धान्तों-आदर्शों के प्रति उनकी आस्था कितनी वास्तविक-अवास्तविक है। राजा हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, कर्ण, भीष्म, राम, कृष्ण, दधीचि, शिव आदि के सामने परीक्षा के अवसर आए थे। उनमें वे खरे उतरे और सच्चे आदर्शवादियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हो सके।''

पू. गुरुदेव ने इस समय को ऐसा ही असाधारण सौभाग्य देने वाला परीक्षा काल कहा है। वे (पृष्ठ १३९ पर) लिखते हैं- ''यों समस्त प्रबुद्ध वर्ग के सामने अपनी समझदारी का परिचय देने का समय है, पर युगनिर्माण परिवार के परिजनों ने गत दिनों जो शिक्षा प्राप्त की है, उसे वस्तुतः समझा-अपनाया है या नहीं, इसकी परख का ठीक यही वख्त है। शिव-शक्ति के युगीन लीला सहचर बनने के सौभाग्य से हममें से किसी को वंचित नहीं रहना है।''उनकी शक्ति योजना को क्रांतिकारी स्तर तक विकसित करना है।

जाग्रत तीर्थों का जीवन्त संदेश

इन नवीन शक्तिपीठों पर तीर्थयात्री पहुँचें और प्रेरणा प्रकाश प्राप्त करें यह तो जरुरी है ही, किन्तु इनता भर पर्याप्त नहीं है। इनके माध्यम से तीर्थ चेतना का आलोक, युग सृजन का उत्साह दूर-दूर तक संचरित होना चाहिए। इस संदर्भ में क्या किया जाना है इस संदर्भ में पूज्यवर की पुस्तक ***'धर्म चेतना से जन-जागरण'*** *के पृष्ठ ५२-५४ का यह अंश पर्याप्त प्रकाश डालता है।*

भारतीय संस्कृति में तीर्थयात्रा को अत्यधिक पुण्य फलदायक माना गया है। तीर्थ-निर्माण पर और उनकी यात्रा पर जितना धन और श्रम लगता है, उतना पूरे धर्मक्षेत्र में और किसी काम पर नहीं लगता। जो लोग तीर्थयात्रा करने में असमर्थ रहते हैं, वे स्थानीय पीपल, आँवला, तुलसी, पर्वत, सरोवर, मंदिर आदि की परिक्रमा करके अपने मन को सन्तोष देते हैं। तीर्थयात्रा का शास्त्रीय स्वरूप पदयात्रा

ही है। प्राचीन काल में धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपनी मण्डलियाँ बनाकर, धर्म प्रचार के लिये निकलते थे। मील के पत्थरों की तरह रास्ते में अमुक ऐतिहासिक स्थानों एवं ज्ञान संस्थानों के सम्पर्क में जाकर लाभान्वित होने का लक्ष्य रहता था। इस रास्ते में गाँव-गाँव धर्म संदेश सुनाते, पड़ाव के स्थान पर कथाकीर्तन करते, सर्वत्र धर्मनिष्ठा जगाते हुए वे तीर्थयात्रा मण्डल आगे-आगे बढ़ते थे। इस तीर्थयात्रा का उद्देश्य और स्वरूप सर्वसाधारण को समझाया जाना चाहिए ताकि उसके लिए जो सुविस्तृत माहात्म्य धर्मग्रन्थों में गाया गया है, उसके कारण उत्पन्न सत्परिणामों के आधार पर जाना जा सकें।

प्रत्येक तीर्थ यात्री को १. स्वास्थ्य सुधार २. ज्ञान अभिवर्धन ३. परिचय एवं ४. अनुभव, विचार ५. उदात्त दृष्टिकोण के पाँच लाभ निजी रूप से मिलते हैं।

सभी कठिनाइयों, अभावों और समस्याओं का प्रधान कारण मनुष्य का भावनात्मक पिछड़ापन होता है। भौतिक समृद्धि बढ़ाने के साथ-साथ दृष्टिकोण का परिष्कार नितांत आवश्यक है। मानवता की सबसे बड़ी सेवा यह है कि जनमानस के परिष्कार के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया जाय। अपनी तीर्थ यात्राएँ यही प्रयोजन पूरा करेंगी। स्मरण रखा जाना चाहिए कि तीर्थयात्रा की अवधि में जिनसे भी सम्पर्क होगा, उनकी सद्भावनाओं के उभार को सत्प्रवृत्तियों में संलग्न होने के लिए नियोजित किया जायेगा। अपनी इस सत्प्रवृत्ति संवर्धन कार्यक्रम के इन दिनों बीस सूत्र हैं।

क्रियापरक-१. साक्षरता विकास के लिए प्रौढ़ पाठशालाएँ, रात्रि पाठशालाएँ २. नारी शिक्षा के लिए तीसरे प्रहर की पाठशालाएँ ३. स्वास्थ्य सर्म्वधन के लिए व्यायाम शालाएँ ४. वृक्षारोपण ५. शाकवाटिकाएँ ६. स्वच्छता अभियान ७. गृह-उद्योग का प्रचलन ८. संगठित श्रमदान ९. परिवार नियोजन १०. सहकारिता के विकास के

लिये प्रयास।

विचारपरक- १. दीवारों पर सद्वाक्य लेखन २. सद्साहित्य के पुस्तकालयों की स्थापना ३. बाल विवाह, अनमेल विवाह, विवाहों में अति व्यय और दहेज का विरोध ४. मृतक भोज एवं बड़े भोज, पर्दाप्रथा, शिक्षा व्यवसाय, छूआछूत जैसी कुप्रथाओं का परित्याग ५. भूतपलीत, भाग्यवाद, मुहूर्त शकुन विचार, टोने-टोटके जैसे अन्धविश्वासों का निवारण ६. नशेबाजी, माँसाहार जैसी आदतों का त्याग ७. जुआ, ठगी, रिश्वत, मुनाफाखोरी, कामचोरी, गुण्डागर्दी जैसी अवांछनीयताओं का परित्याग, असहयोग और विरोध ८. दैनिक जीवन में ईश्वर उपासना का स्थान ९. रात्रि में प्रेरक प्रसंग एवं गोष्ठियों का प्रचलन १०. पर्व त्यौहारों के सामूहिक रूप की परम्परा स्थापित करके व्यक्ति, परिवार और समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा संचार की व्यवस्था।

अपने नैष्ठिक परिजनों को यह बात अच्छी प्रकार हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि युगऋषि की गायत्री शक्तिपीठ योजना इस युग के महाक्रांति की महत्वपूर्ण इकाई है। जहाँ भी लोगों ने उनके प्रति श्रद्धा के नाते शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों की स्थापना की है, उन्हें इसे यथाशीघ्र पू० गुरुदेव के निर्देशानुसार प्रामाणिक स्तर तक पहुँचा ही देना चाहिए।

पत्राचार का पता-
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराञ्चल) पिन- २४९४११
फोन- ०१३३४-२६०६०२, २६०४०३ फैक्स- २६०६८८